तन से लिपटी बेल

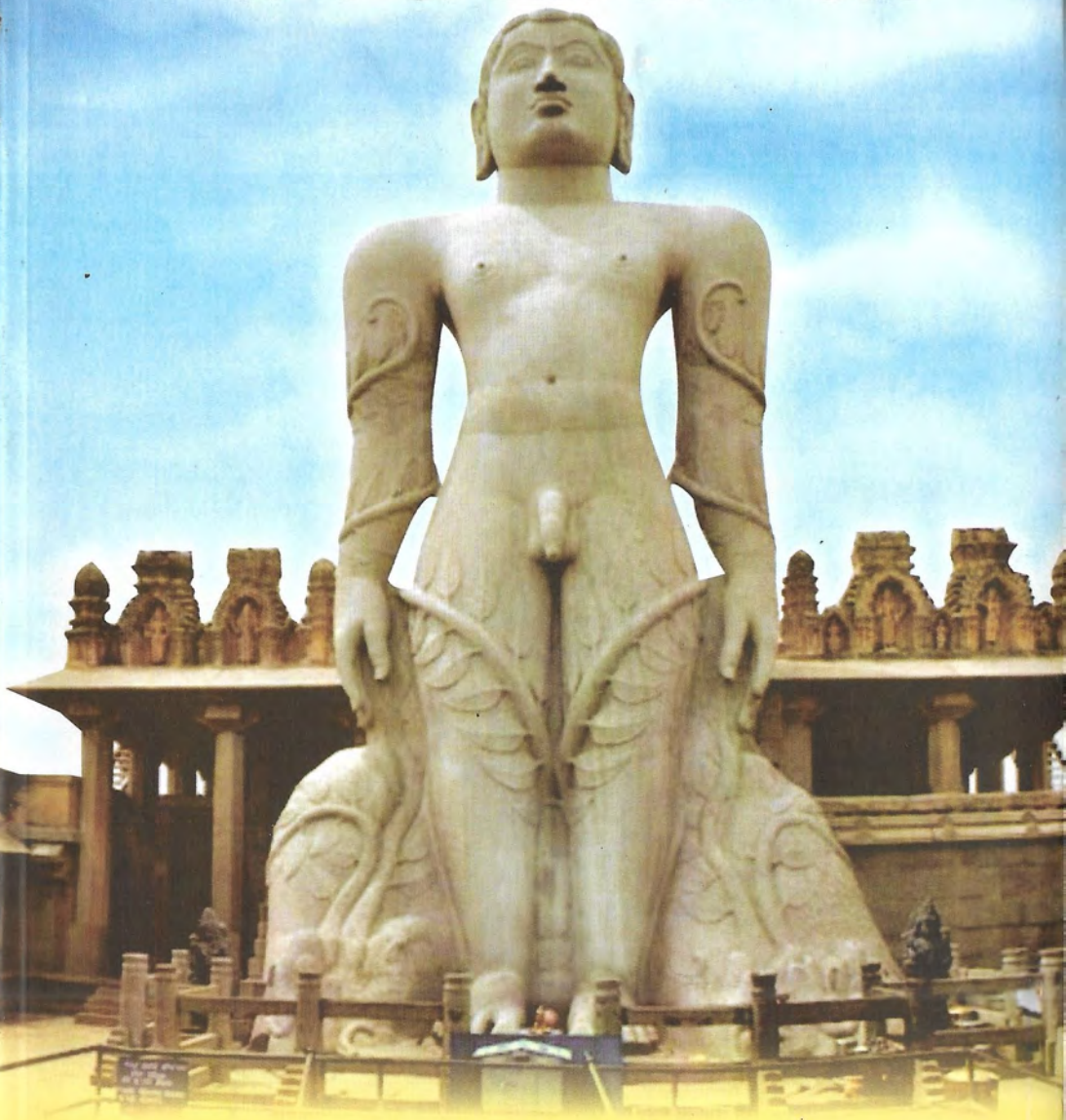

परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज

की 93 वीं जन्म जयन्ती के पुनीत अवसर पर प्रकाशित (22 अप्रैल 2017)

नरेन्द्र-नीरा जैन 65/79, न्यू रोहतक रोड़, नई दिल्ली-5

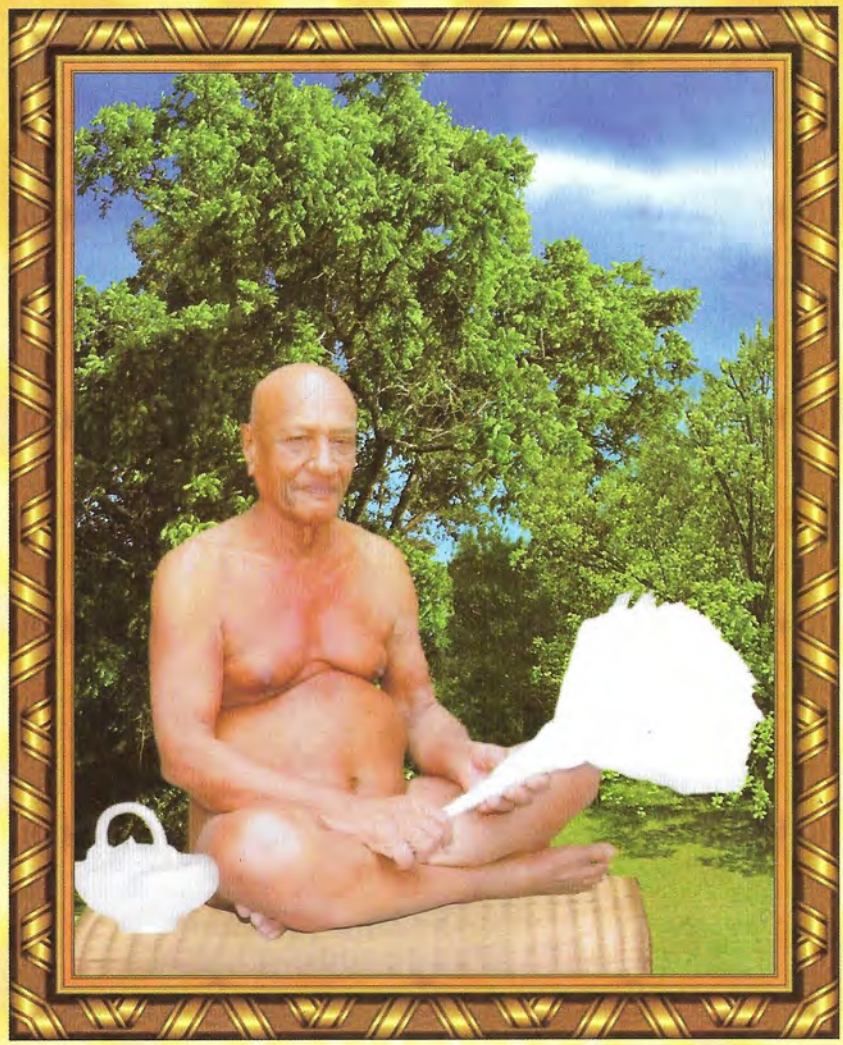

परम पूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानन्द जी मुनिराज

की 93 वीं जन्म जयन्ती महोत्सव (22 अप्रैल 2017)

आचार्य श्री के चरणों में शत्-शत् वन्दन

नरेन्द्र-नीरा जैन एवं परिवार

65/79, न्यू रोहतक रोड़, नई दिल्ली-5, फोनः 9312234908

तन से लिपटी बेल

(राग और विराग के मरणांतक संघर्ष की एक महान पौराणिक-गाथा
तथा लेखक की दो अन्य श्रेष्ठ ऐतिहासिक लंबी कहानियाँ)

आनन्दप्रकाश जैन

अहिंसा मन्दिर प्रकाशन
1, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

प्रकाशक :
राजकृष्ण प्रेमचन्द जैन,
अहिंसा मन्दिर प्रकाशन,
1, दरियागंज, दिल्ली.6

प्रथम संस्करण : 1970

मूल्य : पाँच रुपये मात्र

मुद्रक :
नवीन प्रेस
दिल्ली-6

आशीर्वचन

'तन से लिपटी बेल' कृति 'कृषि करो और ऋषि जीवन बिताओ' आदि के प्रवर्तक युगादि तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र 'बाहुबली' महाराज को लक्ष्य कर लिखी गई है। बाहुबली स्वामी कामदेव थे और उन्होंने न्याय के लिए अपने भाई चक्रवर्ती भरत (जिनके नाम से यह देश भारत कहलाया) से भी लोहा लिया। उन्होंने संसार को असार समझा और कर्म-निर्मूलन के लिए घोर तपस्या की। अपना समय आत्मध्यान में बिताया। उनकी ध्यानावस्था में उनके तन पर बेलें चढ़ गईं। पर तपस्वी की साधना कठोर होती है, वह बाह्य जगत्, यहाँ तक कि शरीर से भी नाता तोड़ लेता है। तपस्वी बाहुबली ने भी ऐसा ही किया। इस कठोर साधना के फलस्वरूप उनके कर्मबन्धन टूट गये, वे परमपद—मुक्ति को पाकर परमात्मा—सिद्धपद पा गये—संसार के आवागमन से सदा के लिए छूट गये।

बाहुबली स्वामी की मूर्ति 'तन से लिपटी बेल' को प्रमाणित करती हुई आज भी श्रवणबेळगोल में विराजमान है। मानो वह जगत् के जीवों को सम्बोधित कर रही है कि—'संसार असार है, मात्र तपस्या ही सार है।'

प्रस्तुत कृति में लेखक महोदय ने बाहुबली स्वामी और उनसे संबंधित घटनाओं के आधार पर अनेक वस्तु-तथ्य समक्ष रखे हैं। अहिंसा मन्दिर प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत कृति लोक में आदर पाये और जन-जन के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक हो।

रानी वाला कोठी, लक्ष्मण झूला

–विद्यानन्द मुनि

प्रकाशकीय

हमारे देश के प्राचीन संस्कृत, प्राकृत तथा पालि साहित्य, मध्युगीन अपभ्रंश साहित्य, आधुनिक भारतीय भाषा साहित्य और लोक-कथाओं में इतना कथा-साहित्य है, जो पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक आदि क्षेत्रों की सीमाओं में आता है। पुराणों, चरित्रग्रन्थों और धार्मिक-कथाओं का अपना विशेष महत्त्व और उपयोग है। जहाँ पुरानी पीढ़ी के स्त्री-पुरुष उसे श्रद्धा से पढ़ते हैं, वहाँ नई पीढ़ी के युवक-युवतियों को उसके प्रति कोई आकर्षण नहीं है, वरन् उपेक्षाभाव है। कुशल लेखक, कवि तथा नाटककार आदि इस समस्त साहित्य को नई दृष्टि से नई शैली और नई-से-नई विधाओं के द्वारा सरस, रोचक और अत्यन्त आकर्षक ढंग से पाठकों को दे सकते हैं, कि वे उन्हें शौक और चाव से चढ़ें, ऐसा ही साहित्य प्रकाशित करना हमारा ध्येय है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्री आनन्दप्रकाश जैन द्वारा एक प्रागैतिहासिक कथा, 'तन से लिपटी बेल' में पाठक बहुत कुछ पठनीय तथा ग्राह्य पाएँगे।

राजकृष्ण प्रेमचंद्र जैन
अहिंसा मन्दिर प्रकाशन,
1, दरियागंज, दिल्ली-6

अतीत का परिवेश

पौराणिक व ऐतिहासिक कथाओं का अपना एक अलग दायरा होता है। व्यक्ति-जीवन के कुछ विशिष्ट पहलुओं को आधुनिक परिवेश की कथाओं में रखना संभव नहीं होता। इन पहलुओं का संबंध हमारे सीमित व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन की इकाइयों से उतना सीधा नहीं होता, जितना स्वदेश और विदेश की बड़ी इकाइयों के साथ होता है। समाज के अग्रणी व्यक्तियों का जीवन जब राजनीति के अंतर्गत चलनेवाले बड़े-बड़े घात-प्रतिघाओं में उलझ जाता है, तो आधुनिक कथा के कुछ पाठकों को लगता है, कि वे कथा-पात्र बनने की परिधि से ही बाहर निकल गए हैं और उनके जीवन में यदि किसी कथा-रस की सृष्टि होती भी है, तो जन-जीवन के कथा-रस से उसका कोई मेल नहीं बेठता! कितने आश्चर्य की बात है कि उन ऐतिहासिक घात-प्रतिघात से उत्पन्न परिणाम करोड़ों व्यक्तिओं के जीवन की असंख्य कहानियाँ बनाता हुआ, उन्हें आमूलचूल बदल डालता है—और इन राजनीतिक घात-प्रतिघातों में तत्कालीन राजनीति के अग्रणी नर-नारियों के व्यक्तिगत जीवन की सूक्ष्म हलचलें सामान्य जन-जीवन की गतिविधि को ही पूर्णतया बदल डालती हैं।

पुराणों और इतिहासों के ये विशिष्ट नर-नारी जब अपनी संचित मान्यताओं और विश्वासों को लिये-दिये विरोधी तत्त्वों से टकराते हैं, तब कुछ क्रान्तिकारी ऐतिहासिक घटनाओं का सृजन अनायास हो जाता है। इन्हें ही हम ऐतिहासिक उपन्यासों या ऐतिहासिक कहानियों का नाम देते हैं—या फिर दंतश्रुति के आधार पर, या और पीछे के अतीत में ये पौराणिक आधार मिलते हैं। घरों, कुटुम्बों या छोटे-छोटे समाजों अलग करना है में होने वाले आन्तरिक संघर्षों की कथाएँ न होकर, ये एक बड़ा विस्तार लेकर चलती हैं, और इनकी कमी को अन्य किसी प्रकार की कथा-कहानी पूरा नहीं कर पाती। अन्य कथा-धाराओं से पौराणिक या ऐतिहासिक कथाधारा की न कोई होड़ है, न समानता। जिन बड़े-बड़े बुलबुलों के भीतर, सूक्ष्मातिसूक्ष्म संवेदनाओं से युक्त, नन्हें-नन्हें असंख्य बुलबुलों का अंबार होता है, ये पौराणिक और ऐतिहासिक कथाएँ उन्हीं बड़े-बड़े बुलबुलों के बनने और फूटने की घटनाओं से निर्मित होती हैं। अक्र दोनों के पाठक भी अलग-अलग रुचियों के होते हैं। उसी शृंखला में 'तन से लिपटी बेल' मेरा यह पौराणिक उपन्यास सम्मिलित हैं।

कुछ वर्षों पहले नई दिल्ली निवासी श्री जम्बूप्रसाद जी जैन ने यह संकेत किया था, कि जैन इतिवृत्तों में बाहुबली का चरित्र एक ऐसा विशिष्ट चरित्र है, जिसे जैन आगम की मान्यताओं से अलग हटकर भी देखा जा सकता है। उन्होंने इस महान् चरित्र को पौराणिक दृष्टि से हटकर, ऐतिहासिक दृष्टि से देखने का आह्वान किया। वह चाहते थे कि इस आदर्श कथा-नायक की कथा कुछ इस प्रकार विकसित हो कि इसे रंगमंच या रुपहले पर्दे पर भी प्रस्तुत किया जा सके। हम दोनों में कथानक पर घंटों बहसें होती थीं। पौराणिकता से अलग हटकर देखने पर लगा कि भरत चक्रवर्ती का सहोदर होकर भी तो संसार के सुख भोगों को तिनके की तरह त्याग सका, उसके चरित्र में कुछ ऐसा जरूर है जो आज भी मनन करने योग्य है। मानव के अंतस्तल में सांसारिक संबंधों और संपत्ति के लिए जो असीम राग होता है, वह कभी भी इतना क्षुद्र नहीं होता कि अंत तक पैर पीछे की ओर घसीटने की सामर्थ्य उसमें न हो। कभी-कभी वह राग भी इतना कारुणिक होता है कि उसकी चरम सीमा को वैराग्य की चरम सीमा से किसी भी तरह क्षुद्र नहीं माना जा सकता।

इसी भावभूमि पर 'तन से लिपटी बेल' की रचना हुई। उद्देश्य दूसरा होने के कारण लेखन-शैली पर ध्यान कम और कथानक पर ध्यान अधिक केन्द्रित रहा। अंत में जो रूप निखकर आया, वह यहाँ प्रस्तुत है। इसे लिखा मैंने अवश्य है, किन्तु इसमें बहुत-कुछ निःस्वार्थ देन बाबू जम्बूप्रसादजी की है और इसके लिए उनके प्रति मैं अपना हार्दिक आभार यहाँ प्रकट करता हूँ।

—**आनन्दप्रकाश जैन**

'पराग',
टाइम्स ऑफ इंडिया बिल्डिंग,
अहिंसा मन्दिर प्रकाशन,
बम्बई-1

प्रकाशकीय

परमपूज्य श्वेतपिच्छाचार्य श्रीविद्यानन्दजी मुनिराज इस शताब्दी के उन युगपुरुषों में हैं, जिनके नाम से 20वीं-21वीं सदी का जैन इतिहास लिखा जाएगा। आपके द्वारा पूरे देश में किए गए कार्य स्वयं अपनी गौरव-गाथा कहेंगे। सब जानते हैं कि शब्दों का जन्म आवश्यकता के दबाव से होता है। जब कोई नई स्थिति सामने आती है, तब उसे संबोधित करने की समस्या उपस्थित होती है। सर्वविदित है कि भारत एक धर्मप्राण देश है। धर्म इसकी आत्मा है। धर्म इसकी नींव है। धर्म और सम्प्रदाय में अंतर है। धर्म की व्याप्ति उदार है, सम्प्रदाय की संकीर्ण। धर्म विश्व को एक नीड़ मान कर चलता है, सम्प्रदाय नीड़ के हर तिनके को बिखेर-सा देता है।

पूज्य आचार्यश्री का यह नीतिघोष कि 'हम सम्प्रदाय-निरपेक्ष हों, धर्म-निरपेक्ष नहीं' एक ऐसा अमर संदेश है जिसे न केवल देश के कोने-कोने में गुंजारित करने बल्कि पूरी दुनिया में प्रचारित करने की ज़रूरत है।

प्रस्तुत कृति तन से लिपटी बेल के कुशल लेखक, कवि, सम्पादक, साहित्यकार ने पुराणों, चरित्रग्रन्थों एवं इतिहास के आधार पर इस धार्मिक और प्रागैतिहासिक की कथा को अपनी सरल, सुबोध भाषा में रचकर सर्वमान्य पाठकों के लिए भी पठनीय तथा ग्राह्य बना दिया है। मैं उनके इस प्रयास को नमन करता हूँ।

मैं अहिंसा मन्दिर प्रकाशन के सभी पदाधिकारियों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस उपयोगी ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन की कुन्दकुन्द भारती को अनुमति प्रदान की। भाई श्री चक्रेश जैन (प्रधान– प्राचीन अग्रवाल दिगम्बर जैन पंचायत, दिल्ली) का भी इस कार्य को सम्पन्न करने में बहुत सहयोग मिला। मैं उनका भी अंतःकरण से आभारी हूँ।

इस कृति के प्रकाशन में भाई नरेन्द्र कुमार जैन 'ग्रेसवे एडवरटाईजर्स' एवं नयनाभिराम टाईपसैटिंग के लिए श्री सुरेश राजपूत एवं मुद्रक के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। इस पुस्तक की मूल प्रति प्राप्त करने से और प्रकाशन तक के उत्तरदायित्व को भाई श्री सतीश जैन (आकाशवाणी) ने जो सहयोग दिया मैं उनके प्रति अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ और भावना व्यक्त करता हूँ कि आगे भी वह इस तरह के कार्य करते रहें।

–मुकेश कुमार जैन
महामंत्री–कुन्दकुन्द भारती

तन से लिपटी बेल

लेखक : आनन्दप्रकश जैन
प्रकाशक : कुन्दकुन्द भारती न्यास, नई दिल्ली-110067
संस्करण : द्वितीय, 22 अप्रैल, 2017 ई., 1000 प्रतियाँ
सौजन्य : श्री नरेन्द्र कुमार जैन, ग्रेसवे एडवरटाईजर्स,
8774/5, शीदी पुरा, दिल्ली-110005
दूरभाष : 23670663, 9312234908 (मो.)
साज-सज्जा : श्री सतीश जैन (आकाशवाणी)
मूल्य : स्वाध्याय

© राजकृष्ण प्रेमचन्द जैन, अहिंसा मन्दिर प्रकाशन, दरियागंज के पास सर्वाधिकार सुरक्षित

प्राप्ति-स्थल

1. **कुन्दकुन्द भारती न्यास,**
18-बी, स्पेशल इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110067
दूरभाष : 26564510, 26513138
2. श्री नरेन्द्र कुमार जैन, ग्रेसवे एडवरटाईजर्स,
8774/5, शीदी पुरा, दिल्ली-110005
दूरभाष : 23670663, 9312234908 (मो.)
3. श्री दिगम्बर जैनमठ श्रवणबेळगोल
जिला हासन (कर्नाटक) 573135

TAN SE LIPTI BAIL
by **ANANDPRAKASH JAIN**
Publisher : Kund Kund Bharti Trust,
18-B, Special Institutional Area,
New Delhi-110067 (India)

Edition : Second, 22 April 2017, 1000 Copies

तन से लिपटी बेल

1

समृद्धि और वैभव की विशाल नगरी अयोध्या का दैनिक जीवन–क्रम उत्साह और उत्सव से उमड़ा चलता था। इक्ष्वाकुवंश का सूर्य अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित अयोध्या के जनजीवन पर छाया हुआ था। क्या साधुसंतों का समागम, क्या आकाश को चूमने वाले भवनों का निर्माण, सभी में अयोध्या अनुपम थी।

कलाविदों ने अपनी कला से अयोध्या का श्रृंगार किया था। नित्य ही एक–न–एक कला प्रदर्शन होता था। युद्ध के दिनों में लोग सामूहिकरूप से शस्त्र सँभाल लेते थे। शान्तिकाल में गायन, वादन और संतों की वाणी समान भाव से सुनी जाती थी। बल, विभूति और कला, किसी में कोई नगर अयोध्या का सामना नहीं कर सकता था।

महाराज ऋषभदेव के स्वर्ग–शासन में शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे। शौर्य का पुतला भरत, तेजस्विता का स्तूप बाहुबली, मानों किसी योद्धा की दो बाहों की तरह अयोध्या के जीवन–संघर्ष का संचालन कर रहे थे। वे महाराजा ऋषभदेव के सभी पुत्रों में अग्रणी थे।

समस्त भूमण्डल पर एकछत्र राज्य की स्थापना महाबली भरत का दैनिक स्वप्न था। उसकी यह अभिलाषा उनकी अनवरतविजयों के साथ एकाकार होकर बढ़ रही थी। वह जिधर अपने अश्व की बागडोर मोड़ देता था, राज्याधीश कटे पतंगों की नाईं उसके चरणों पर आ गिरते थे।

बाहुबली सौम्य, शांत और सुन्दर थे। सुन्दर इतने कि सारी अयोध्या उन्हे कामदेव के नाम से पुकारती थी। जीवन को विभन्नरूपों में देखकर उसमें रस लेना उनकी प्रवृत्ति थी। स्वाभिमान उनमें कूट–कूटकर भरा था। उनका मोह सृष्टि की स्वच्छन्दता के प्रति था। प्रकृतियाँ इतनी भिन्न होते हुए भी दोनों भाइयों का स्नेह एक ऐसे अटूट और दृढ़बन्धन से बंधा था, जो दो सहोदरों में भी सम्भव नहीं हो सकता।

अयोध्या में एक दिन आल्हाद और उत्सव का बाजार गरम हो गया। सूर्य का प्रखर प्रकाश गगनचुम्बी अट्टलिकाओं से टकराता अयोध्या के राजमार्ग पर छा गया था। जहाँ देखो, जिधर देखो, मानव आकृतियाँ जयनाद करती दृष्टिगोचर हो रही थीं। छज्जे, अटारियाँ, छत और राजमार्ग सभी लोगों से अटे पड़े थे। अश्वारोहीसैनिक व्यवस्था करते हुए इधर–उधर दौड़ रहे थे। धर्म की प्रतीक पीली ध्वजाएँ चारों ओर दृष्टि की झिलमिली दे रही थीं। राजमार्ग पर फूलों का बिस्तरा बिछा पड़ा था।

कुछ देर में ही राजमहल की ओर से एक भव्यरथ आता दिखाई दिया। साथ में दोनों ओर उद्यत अंगरक्षकों का दल था। जनता ने अपनी उत्सुकदृष्टियाँ उस ओर घुमाईं और ''कुमार बाहुबली की जय'' के निनाद से आकाश गूँज उठा। रथ तीव्र गति से दोनों ओर की जनपंक्तियों के बीच से अयोध्या के परकोटे के मुख्य द्वार की ओर दौड़ता हुआ चला गया।

दक्षिण से एक छोटे–से राज्य पोदनपुर को जीतकर भरत सेनाओं सहित अयोध्या वापस आ रहा था। यह स्वागतोत्सव उसी की अगवानी करने के लिए हुआ था। बाहुबली मुख्य द्वार पर उसका स्वागत करने के लिए गए थे। अब प्रजा की उत्सुक निगाहें कोटद्वार की दिशा में लगी थीं। उनके हृदयों पर भरत का सिक्का था। उनकी निगाहों में उसके शौर्य और पराक्रम का आदर था। भरत उनके स्वप्नों का खिलौना था। भरत उनका प्रिय था, उनका कुटुम्बी था, उनका राजकुमार था। बाहुबली प्रजा की एक आँख थी, तो भरत दूसरी आँख।

उस के बाहर हाथियों की पंक्तियाँ शुभागमन में सजी खड़ी थीं। हर्ष की दुंदुभि ऊँची उठाये उद्घोषक खड़ा था। बाहुबली रथ से उतरकर घोड़े पर आ गए थे। बार–बार सूर्य के ताप को हथेलियों से रोककर वह दूरक्षितिज की ओर देख लेते थे; जहाँ अब धूल के गोले उठते दिखाई देने लगे थे।

पास ही अश्व पर आरूढ़ खड़े सुमति मंत्री की ओर देखकर बाहुबली ने उल्लसित स्वर में कहा, ''मंत्रीजी, भैया आ गए''!

सुमति मंत्री ने प्रसन्न मुद्रा में कहा, ''हाँ कुमार, अयोध्या का 'गौरव–स्तम्भ' दिखाई दे रहा है।''

मानो स्वीकारोक्ति में दुन्दुभी ने खिलखिलाकर शोर मचाया। 'महाबली भरत की जय', 'महाराज भरत की जय' के नाद से वायुमंडल का रोम–रोम नाच उठा। उत्तर में पल–पल निकट आती विजय–वाहिनी की ओर से दुन्दुभि बजी और एक श्वेत अश्व उसकी पंक्तियों से निकलकर तेजी से मुख्यद्वार की ओर झपटा। कुछ पीछे की ओर अश्व भी आते दिखाई दिए।

इधर से बाहुबली का अश्व वेग से उछला और तीव्र वेग से आगे बढ़ा। पास आने पर दोनों भ्रातृयोगी अश्वारोही अपने–अपने अश्वों से कूद पड़े और एक–दूसरे के गले से लिपट गए। यह था दो अभिन्न भाइयों का प्रेममिलन, जिसे देखकर अयोध्यावासियों कें हृदय की तरंगें उछल–उछल पड़ रही थीं।

विशाल परकोटे का मुख्यद्वार भी हर्ष से शोर मचाता हुआ खुल गया। हाथियों ने अपनी–अपनी सूँड़ें ऊपर उठाकर विजयी सेना नायक भरत का अभिवादन किया। अश्वों ने हिनहिनाकर अपनी परिवर्तित चेतना प्रकट की।

दोनों भाई रथ पर चढ़कर खड़े हो गए, ताकि उत्सुक जनता उन्हें भली–भाँति देख सके। सवारी असंख्य स्वागतकारिणी मेखला के साथ अयोध्या के विस्तीर्ण प्रवेश द्वार से भीतर घुसी। साथ ही अयोध्या एक–एक जीता–जागता ध्वनियंत्र जाग उठा। 'अयोध्या के तिलक की जय', 'युवराज भरत की जय'।

इस स्फुरणदायक वातावरण से गुजरता हुआ रथ राजमहल की ओर चला। राजपथ पुष्पों की सुरभि से महक रहा था। इस राज्योचित अभिवादन को सहर्ष ग्रहण करते हुए भरत बाहुबली की मुसकराहट में अपनी मुसकराहट मिला देता था।

राजमहल के द्वार पर महाराजा ऋषभदेव अपनी आँखें पसारे खड़े थे। अभी–अभी अनुचरने उन्हें दोनों कुमारों के पुनः अयोध्या प्रवेश का समाचार दिया था। रथारूढ़ भरत को देखते ही उनकी आँखों में स्नेह का स्फुलिंग चमक उठा। भरत रथ से उतरकर उनके चरणों को छुने के लिए दौड़ा।

गद्‌गद् होकर महाराज ने भरत को अपनी सुदृढ़ बाहुओं से ऊँचे उठाया और छाती से लगा लिया। उनकी लम्बी–लम्बी अँगुलियाँ उसकी हारी–थकी पीठ पर वात्सल्य की थपकियाँ देने लगीं। उन थपकियों में स्नेह की मृदुता थी,

वंश का अभिमान था और मिलन का सुख था। भरत ने इस सुख का अनुभव किया और उसके अतिरेक से उसने पुकाराः ''पिताजी!''

महाराज ने एक क्षण को अपनी पलकें झपकाई। 'पुत्र, तूने अयोध्या को गौरव दिया है। जो अपने देश का मान रखता है वह बड़ा हो जाता है। जब तक सूरज और चाँद रहेंगे, तेरी बड़ाई को धरती नहीं भूलेगी।'

बाहुबली पास ही खड़ा इस तमाशे को मुग्ध नयनों से निहार रहा था। उसने प्रफुल्ल होते हुए कहा, ''भैया के साथ धरती को मेरा नाम भी तो याद रखना पड़ेगा न, पिताजी''।

अयोध्यापति ने कहा, ''धरती सदा विजेताओं को ही याद रखती है। जब तुम विजय करोगे, तो तुम्हारा नाम भी धरती की छाती पर अंकित हो जाएगा। हम तुम्हें भी विजय का अवसर देंगे।''

एक बार फिर तुमुल जयघोष हुआ। दोनों पुत्रों के कन्धों पर हाथ रखकर महाराज ऋषभदेव राजमहल में चले गए।

अभी इस उमड़ें हुए उत्साह और उत्सव की धूल भली प्रकार बैठी भी न थी कि अयोध्या के राजपथ से, जो अब लगभग अपनी सामान्य अवस्था पर आ गया था, एक अश्वारोही अपने अश्व को दौड़ाता हुआ राजमहल तक आया और उसने महाराज के सामने उपस्थित होने की आज्ञा चाही। वह अयोध्या से लगते हुए एक छोटे से राज्य वैजयन्ती का राजदूत था।

भरत का अभिनन्दन करने के लिए राज दरबार सुसज्जित किया गया था। भाट और चारण विरूदावलियाँ गा रहे थे। प्रतिहारी ने बीच ही में वैजयन्ती के राजदूत के आने का समाचार सुनाया।

महाराज ने उसे उपस्थित करने की आज्ञा दी। कविताओं का पाठ रोक दिया गया। राजदूत ने महाराज के सामने आकर भूमि तक झुककर दण्डवत् किया। ''राजाओं में श्रेष्ठ, इक्ष्वाकु–वंश–दीपक, महामंडलेश्वर, महाराज ऋषभदेव की जय! यह दास वैजयन्ती की ओर से सैनिकशक्ति की सहायता की याचना करता है।''

''सैनिकसहायता!'' महाराज ने आश्चर्य करते हुए पूछा–''दूत, तुम किसी संकट की सूचना दे रहे हो''

''हाँ, देव,'' राजदूत ने निवेदन किया–''रतनपुर के मंडलेश्वर राजा वज्रबाहु ने वैजयन्ती पर अपने पंजे फैलाये हैं। वैजयन्ती नरेश अयोध्यापति की सुनीति में अपना असीम विश्वास प्रकट करते हैं और इस बुरी घड़ी में अयोध्या की प्रबल सेनाओं की सहायता की माँग करते हैं।''

''महाराज, वज्रबाहु ने आक्रमण किया है।'' महाराज ऋषभदेव ने पूछा–''कारण''

''वैजयन्ती की आन इसका कारण है, देव। महाराज पद्मसेन अपनी पुत्री का विवाह कोशांबी के युवराज से करना चाहते हैं। यह विवाह महाराज वज्रबाहु को पसन्द नहीं है। वह जबरदस्ती हमारी राजकुमारी का हरण करना चाहते हैं। हम मर मिटेंगे, देव, मगर ऐसा नहीं होने देंगे।''

ऐसी ही अवसरों पर भरत के धैर्य का बाँध टूट पड़ता था। राजदूत की बात सुनकर वह विहँस उठा।

महाराज ऋषभदेव ने पुत्र के मुँह की ओर देखकर कहा, ''कुछ कहना चाहते हो, भरत''

''हाँ, देव,'' भरत ने कहा–''मैं पहले भी कितनी बार निवेदन कर चुका हूँ। जिस दिन किसी बड़ी मछली का जी चाहता है, छोटी मछली को दबोच लेती है। इन मछलियों के सिर पर एक मगर की जरूरत है। एक बार दिग्विजय कर डालिए। ये सारे झगड़े हमेशा के लिए बन्द हो जाएगें।''

इसी बीच बाहुबली बोल उठे–''भैया को तो सदा दिग्विजय के स्वप्न आते हैं।''

भरत ने उलहने से बाहुबली की ओर देखा।

महाराज ऋषभदेव ने कहा, ''भरत अभी दिग्विजय का समय नहीं आया। यह वैजयन्ती का बढ़ाया हुआ हाथ थामने का समय है।''

"आज्ञा दीजिये, देव।" आज्ञाकारी भरत बोला– "भरत वैजयन्ती के सम्मान की रक्षा करेगा।"

महाराज ऋषभदेव ने पुत्र को प्रशंसा की दृष्टि से देखा। "अभी तो राह की धूल भी तुम्हारे शरीर से नहीं झरी, भरत! हम तुम्हारे उत्साह से प्रसन्न हैं। किन्तु एक अवसर अपने छोटे भाई को भी तो दो।"

महाराज ऋषभदेव की बात सुनकर बाहुबली जैसे चौंक उठे। एक पूर्व–स्मृति उनके मानस पटल पर चित्र की तरह खिंच गई। वाराणसी नगरी का महापुष्करिणी का मेला था। जगह–जगह के नन्हे–नन्हे बालक–बालिकाओं, सजीली मूँछों वाले युवकों और श्वेत दाढ़ियों वाले वृद्धों का सम्मिलन था। महागंगा अपने प्रबल वेग के साथ बही चली जा रही थी। उस महा मेले में स्थान–स्थान के राजकुमार और राजकुमारियाँ आई हुई थीं। उनके साथ आये हुए रक्षकों की साज–सज्जा अनुपम थी। कुछ पुण्य लूटने के लिए आये थे, तो कुछ उस मेले का एक वर्ष में आने वाले आन्नद लूटने। उन्हीं में बाहुबली भी था। तब एक दिन उस मेले की भारी धकापेल में एक ओर से विकट शोर सुनाई दिया। एक लड़की डूब रही थी। उसके पीछे अपनी जान की परवाह न करके एक लड़का कूदा था। फिर हल्का–सा स्फुरण लेकर बाहुबली स्वयं महागंगा में गोते लगा रहा था और सबके बाद सैकड़ों अच्छे–अच्छे तैराक रक्षक कूद पड़े थे। महागंगा का उद्दाम वेग उस लड़की, उस लड़के और बाहुबली को उन रक्षकों की पहुँच के बाहर ले गया था। जीवन–मरण की बाजी थी। उससे भी अधिक दूसरे के जीवन को बचाने की बाजी थी। उस लड़के ने उस लड़की को पकड़ लिया। किन्तु एक छोटे से भँवर ने उन दोनों को एक साथ अपनी लपेट में लिया और पानी के आवरण के भीतर छिपा लिया। साथ ही बाहुबली भी उसी लपेट के साथ अदृश्य हो गया, और फिर तीनों कुछ समय बाद बहुत दूरी पर निकले। वह लड़का और वह लड़की अचेत हो चुके थे। बाहुबली अतुल पानी के तल से अपनी बाहुओं का बल लगाकर उन्हें खींच रहा था। वह महागंगा के वेग से लड़ रहा था। कौन विजयी होगा यह अनिश्चित था। किनारा दूर था, रक्षक दूर थे, जीवन दूर था। केवल काल का खुला हुआ मुँह उन तीनों को निगल लेने के लिए अत्यन्त निकट था। लेकिन बाहुबली जूझता ही रहा, जूझता ही रहा। फिर भी वह महागंगा के वेग को नहीं पछाड़ सका। किन्तु महागंगा भी उनके सामने हार मान गई। बाहुबली अपने साथ उस लड़के और उस लड़की को लिये, जहाँ था वहीं, अचल बनकर तैरता रहा। थोड़ी देर में रक्षक आ गये और वे तीनों हाथों ही हाथों में उठा लिये गए। इस मानव और जड़ की लड़ाई में मानव विजयी हुआ था, अचेतन हार गया था।

बाहर आकर उस लड़के को एक घंटे बाद होश आया। सैकड़ों दास–दासियों के मुँह पर स्याही–सी फिर रही थी। बाहुबली को लोग कन्धों पर उठाए हुए थे। जब उस लड़के को चेतना आई वह बातचीत करने के लायक हुआ, तो उसने बाहुबली की ओर कृतज्ञता की दृष्टि से देखा था। उसने पूछा था–''तुम.....''

बाहुबली ने उत्तर दिया था–''मैं अयोध्या का राजकुमार बाहुबली और तुम''

उसने उत्तर दिया था–''मैं रतनपुर का राजकुमार वज्रबाहु। तुमने मेरी जान बचाई है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ।''

बाहुबली हँस पड़ा था–''तुमने वीरता का मान रखा है। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ।''

और दोनों सदा के लिए मानवीय, मानवोचित, मित्रत्व के अटूट बन्धन में बँध गये थे।

और वह लड़की कौन थी अब याद आया। वह थी वैजयन्ती की राजकुमारी। वह दुःख में भयंकर विलाप कर रही थी। अपनी पुत्री के प्राण जाते देख उसकी मोह–विह्वल माता भी उसके पीछे महागंगा में कूद पड़ी थी। बेटी बच गई थी और मां ने अपने प्राण दे दिये थे। जैसे उसने जीवन से कालदेव का फाड़ा हुआ मुँह भर दिया हो। वैजयन्ती के महाराज एकटक कभी अपनी पुत्री की ओर देख लेते, कभी महागंगा की हहराती, उछलती चंचल और क्रूर लहरों को, जिन्होंने उनकी जीवन संगिनी को सदा के लिए उनसे छीन लिया था।

आज कितने दिनों के बाद उस टूटे हुए अध्याय का पुनः आरम्भ हुआ है। किस प्रकार अयोध्यापति की महती राजसभा के पत्थर के स्तम्भों के ऊपर, हथौड़े और छेनी से उभारे गये मनोरम चित्रों की पृष्ठभूमि पर, बाहुबली के अतीत के वे छोटे से सजीवचित्र चलती–फिरती छायाओं की तरह उभर आये थे। उन कुछ क्षेत्रों में बहुत सारा बीता हुआ इतिहास सप्राण हो उठा था और बाहुबली की दृष्टि किसी ओर न जाकर, भित्तिचित्रों के ऊपर चित्रलिखित की नाईं अटक गई थी।

आश्चर्य से बाहुबली की ओर देखकर महाराज ऋषभदेव ने पूछा–''किस चिन्ता में हैं, अयोध्या के छोटे राजकुमार''

बाहुबली फिर चौंक उठे। ''देव! क्षमा करें। मेरी विनय है कि महाराज वज्रबाहु मेरे बचपन के मित्र हैं, मैं सोच रहा हूँ कि मित्र मित्र से किस प्रकार लड़ सकेगा''।

महाराज ऋषभदेव मुसकरा उठे–''जब दूसरों से लड़ा जाता है, तब वीतरा की परीक्षा होती है। जब अपनों से लड़ने का प्रश्न आता है, तब धीरता की परीक्षा होती है। हमें विश्वास है कि बाहुबली में, हमारे बेटे में, वीरता और धीरता दोनों ही गुण हैं। अपने मित्र को अनीति से रोको, पुत्र! इस समय तुम्हारा यही कर्तव्य है।''

बाहुबली ने मस्तक नवाया, किन्तु उसकी आँखों ने अपनी जिस लम्बी–चौड़ी छाती को निहारा उसमें अपूर्व और अकथनीय संघर्ष की आँधी उठ रही थी। महाराज को यथाविधि प्रणाम करके बाहुबली ने राजसभा से विदा ले ली।

वैजयन्ती के राजदूत की ओर तेजपूर्ण दृष्टि से देखकर महाराज ऋषभदेव ने ओजमिश्रित स्वर में कहा–''जाओ, राजन, वैजयन्ती–नरेश से कहना कि वैजयन्ती के मान को हम अपना मान समझते हैं। उस मान के लिए हम अपने प्राण, अपना जोश और अपनी वीरता वैजयन्ती के वीरों, वैजयन्ती के साथ काटें पर रख देंगे। और हमें यकिन है कि वह वजन काफी भारी होगा।''

राजदूत ने हर्ष से अपना सिर नवाया और उसने इकहरे स्वर में जयघोष किया: ''महामण्डलेश्वर, अयोध्यापति, महाराज ऋषभदेव की जय। कुमार भरत, कुमार बाहुबली की जय।''

महाराज ने आर्शीवाद का हाथ उठाया और सिर नीचा किये उसे ग्रहण करता हुआ वह राजसभा के मुख–द्वार से बाहर निकल गया।

एक विशाल सेनानी बनकर बाहुबली ने वैजयन्ती की ओर कूच किया।

2

परिस्थिति के झोंके मनुष्य को क्या–क्या नाच नचाते हैं, बाहुबली यही सोचते चले जा रहे थे। एक ओर वह अपार सेना के सेनापति थे, एक अथाह बल अपने साथ लिए चल रहे थे, जिसका अर्थ था कि यदि उनके मित्र ने उनकी नीति–अनीति की परवाह न की, तो वह अपने बल का, अपनी सेना का प्रयोग करेंगे। यही सबसे पहला व्यवहार होगा, जो एक मित्र अपने मित्र के लिए करेगा। धिक्कार है ऐसी मित्रता पर, बाहुबली ने सोचा। क्या वज्रबाहु उनके समझाने से सुनीति को समझ जाएगा। यह प्रश्न बार–बार उनके मस्तिष्क में आकर उन्हें विचलित कर रहा था।

वैजयन्ती अभी दूर थी। बाहुबली की सेनाएँ बिना उचित विश्राम के ही निरन्तर कूच करती जा रही थीं। दूर–दूर तक अगाध वन दिखाई दे रहा था। हरियाली का नाम–निशान नहीं था। बाहुबली के मन के आन्दोलन से होड़ करता हुआ वनस्थली का झंझावात धूल और गुब्बार को अपने साथ उड़ाये जा रहा था।

सूर्य के ताप को अपनी हथेलिओं की ओट करते हुए बाहुबली ने एक बार वन को दूर तक देखा। उनके पीछे साँप की तरह बल खाती हुई सेनाओं की पंक्तियाँ चली आ रही थीं। सहसा उन्हें बहुत दूर पर कुछ आकृतियाँ दिखाई दीं ''क्या ये आकृतियाँ मनुष्यों की ही हो सकती हैं।'' उन्होनें अपने मुख्य अंगरक्षक वीरसिंह को अँगुली से दिखा कर पूछा–''देखते हो, वीरसिंह, मनुष्य ही तो लगते हैं।''

'हाँ, कुमार, मनुष्य ही मालूम होते हैं।'' वीरसिंह ने दृष्टि दौड़ा कर कहा–''कौन हो सकते हैं। वीरसिंह, देखो तो आगे बढ़कर।''

वीरसिंह का अश्व तेजी से आगे को झपटा। कुछ ही देर में वह आखों से ओझल होकर उन लोगों के पास जा पहुँचा। बीस–पच्चीस अश्वारोहियों के बीच में चार–पाँच पालकियाँ थी। उसे देखते ही उन अश्वारोहियों ने अपनी–अपनी म्यानों से तलवारें खींच ली। दल के नायक ने डाँट कर पूछा, ''कौन हो तुम''

"यही मैं पूछना चाहता हूँ, कौन हो तुम लोग। और इन पालकियों में क्या है, कहाँ जा रहे हो ?, कँहा से आये हो," वीरसिंह ने उतने ही तेज स्वर में नायक से प्रश्न पर प्रश्न किये–

"युवक, तेरे इतने सवालों का जवाब लोहे की जबान ही दे सकती हैं। भाग जा, नहीं तो वार सम्भाल।" नायक ने कहा–

"जो भी तुम लोग हो, तुम्हारा इरादा कुछ बुरा मालूम होता है। सुनो, मैं अयोध्या के राजकुमार महामान्य श्री बाहुबली का अंगरक्षक हूँ। हमारी सेनाएँ वैजयन्ती के सहायता के लिए जा रही हैं। वह देखो! यदि तुमने मेरे प्रश्नों का उचित उत्तर नहीं दिया तो तुम्हारी चमड़े की जबानें खींच ली जाएँगी और इन लोहे की जबानें के जबानों के टुकड़े–टुकड़े कर दिए जायँगे। बोलो, कौन हो तुम लोग "

किसकी जबान खिंचेगी और किसकी जबानों के टुकड़े–टुकड़े होंगे इसका निर्णय होने के लिए वीरों की प्रथा के अनुसार तलवारें एक–दूसरे की ओर झपटी ही थीं कि तभी बीच की कुछ अधिक सजी हुई पालकी में से एक तीव्र किन्तु सुरीला स्वर सुनाई पड़ा।

"नायक, झगड़ा न करो, उनको बता दो कि हम कौन हैं!"

पलक मारते ही सब तलवारें म्यानों में चली गईं, नायक ने अपने इस छोटे–से दल का परिचय दिया–

वैजयन्ती का छोटे–सा गढ़ चारों ओर से घिर गया था। शत्रु का घेरा दिन पर दिन संकुचित होता जा रहा था। अन्न और पानी का अभाव सामने अपना कराल–गाल फाड़े खड़ा था। आता हुआ संकट अपने पंजे दिखा रहा था। कौशांबी और अयोध्या दोंनो जगह सहायता का संदेश भेजा गया था। वैजयन्ती की राजकुमारी वैजयन्ती की आन और मान की प्रतीक थी। वीरों के प्राण रहे या जाएँ, किन्तु वीरता की आन को बट्टा नहीं लगना चाहिए। किसी भी ओर से सहायता आई न देखकर, सुरक्षा के विचार से, वैजयन्ती–नरेश ने राजनंदिनी को वैजयन्ती से दूर करने का निश्चय किया। एक दूर प्रदेश में उसके मामा का छोटा–सा दृढ़ पर्वत–निवास था। कुछ विश्वसनीय व जान पर खेल जाने वाले वीर अंगरक्षकों के साथ, रात के समय राजनन्दिनी को चुपके

से गुप्तराह के द्वारा वैजयन्ती से निकाल दिया गया था। साथ में थीं मुँहबोली सखी–सहेलियाँ। अब वैजयन्ती यदि हार भी जाए, तो उसकी आन सुरक्षित थी।

जब तक वीरसिंह को पूरा समाचार ज्ञात हो, बाहुबली भी अपना अश्व कुदाते हुए उसी स्थान पर पहुँच गये। उन्होंने भी राजनन्दिनी के अंगरक्षकों के नायक से कुछ हाल सुन लिया और उनकी कुशाग्रबुद्धि ने क्षण–मात्र में सारा रहस्य जान लिया।

राजकुमारी की पालकी बाहुबली के पार्श्व पर थी और उस पर झीनास्त परदा पड़ा था। वहीं से उसने बाहुबली की मनोरम मूर्ति देखी, तो बस देखती ही रह गयी। उच्छृंखल, किन्तु सधे हुए घोड़े पर बाहुबली देवकुमार से प्रतीत हो रहे थे और वह रास कसते हुए कह रहे थे–

"कहीं आने–जाने की आवश्यकता नहीं है। वापस लौट चलो। जब तक अयोध्या का एक भी वीर जीवित रहेगा, कोई वैजयन्ती की ईंट तक को नहीं छू सकेगा।"

ओह, कितना अमृत था उस देव–वाणी में! बाध्य होकर कोई अपने घर, अपनी जन्मभूमि को त्यागता है, तो कितना दुःख होता है उसे। राजनन्दिनी में उत्पन्न हुई, वैजयन्ती में पली, और वैजयन्ती में ही बड़ी हुई। उसके कारण आज वैजयन्ती पर दुर्भाग्य की कालीघटाएँ घिर आई थीं। वैजयन्ती आज उसकी रक्षा करने में असमर्थ थी। कितने दारूण दुःख में डुबा हुआ था वह गृह–त्याग बाहुबली ने आकर तो मानो प्राणदान ही दिया था। सूखे खेतों में वर्षा का पानी झिलमिला उठा था।

एक नजर अपने त्राण–दाता को देखने के लिए राजनन्दिनी ने अपनी पालकी का परदा उठाया। बाहुबली की उचटती निगाह उसकी ओर देखकर फिर गई। फिर जैसे कोई अपूर्व और अद्‌भुत वस्तु नजर में आकर निकल गई हो। बाहुबली ने एक बार एक क्षण के लिए जान–बूझकर फिर उसकी ओर दृष्टि डाली, निमिष मात्र में दोनों की नजरें मिलीं। राजनन्दिनी की आँखों में बाहुबली की वीरोचित वेशभूषा और सौम्यरूप की प्रशंसा थी और बाहुबली की आँखों में राजनन्दिनी की कोमलता और श्री को देखते रहने का चाव था। किन्तु उनका चंचल अश्व उन्हें लेकर आगे गढ़ गया।

राजनन्दिनी के पास ही बैठी उसकी मुखरा सखी ने हँसकर कहा–''ये निगाहें तो बिजलियाँ गिराकर ही रह गई।''

''क्यों '' राजनन्दिनी ने उलाहने से पूछा–

''और नहीं तो क्या!'' सखी ने कहा–''न अश्व ने टिकने दिया और न निगाहों के तेज ने। टिक जाते, तो दिन में ही चाँद को जी भर न देख लेते।''

राजनन्दिनी हँसी–''जी भर कर ही क्या करते तेरी तरह बैठकर बातें थोड़े ही बनाने लगते। जानती नहीं, वह अयोध्या के राजकुमार हैं।''

तिरछी दृष्टि से देखकर मुखरा ने कहा–''हाँ जी, जानती क्यों नहीं, वह अयोध्या के राजकुमार हैं और मैं तो यह भी जानती हूँ कि आप वैजयन्ती की राजकुमारी हैं...बस इतनी ही सी तो बात है।''

''तू बड़ी वाचाल हो गई है।'' राजकुमारी ने सलज्ज हँसी हँसते हुए कहा।

राजकुमारी की आज्ञा से पालकियाँ फिर उठीं और बाहुबली के अंगरक्षक वीरसिंह ने इस छोटे से दल को विस्तृतवाहिनी के बीच में ले जाकर छोड़ दिया।

राजनन्दिनी को देखकर बाहुबली के मन में एक साथ कितने ही विचार आए। आकमण–त्रस्त अपनी जन्मभूमि से अपनी मर्यादा बचाने के लिए भागी हुई इस राजकन्या के प्रति उनके मन में दया का सागर उमड़ पड़ा। कन्या की इच्छा के विरूद्ध उसका विवाह किसी से हो, यह कृत्य स्वयं में बलात्कार से अधिक गौरव नहीं रखता। उन्हें दुःख हुआ, कि उनका अभिन्नमित्र ही इसमें आक्रमणकर्ता का रूप लिये खड़ा है।

दूसरी ओर उनके मन में राजनन्दिनी के ऊपर डाली हुई उस दूसरी चेतन दृष्टि ने भयानक उथल–पुथल मचा दी। इतना रूप और इतने निर्दोष अंग–विन्यास! यह मानवी थी या स्वर्ग की देवी कौन मानव है, जो इस प्रकार के आकर्षण से बच सकता है। यदि वज्रबाहु ही इसके वशीभूत हो गया, तो इसमें क्या आश्चर्य है।

3

अयोध्या की अजेय सेनाओं का आगमन सुनकर एक बार तो वज्रबाहु के हाथों के तोते उड़ गये। किन्तु जब उसे मालूम हुआ कि उसका परम मित्र बाहुबली ही उस सेना का संचालन कर रहा है, तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

क्या बाहुबली उससे युद्ध करेगा क्या राजनन्दिनी की मनमोहिनी छवी ही उसे यहाँ खींच कर लाई है।

जब तक अयोध्या की सेनाएँ वैजयन्ती के गढ़ के बाहर नहीं पहुँच गई, वज्रबाहु के मन में ये दो प्रश्न चक्कर काटते ही रहे। अब उसने निश्चय किया, कि उसे एक बार स्वयं अपने मित्र से भेंट करनी ही होगी।

यथाविधि बाहुबली के पास महाराजवज्रबाहु की भेंट की इच्छा की सूचना भेजी गयी। सुनते ही बाहुबली के मन पर से जैसे एक बोझ–सा हट गया। उन्होने सहर्ष इस भेंट के लिए स्वीकृति दे दी।

दोनों सेनाओं के बीच में एक तंबू तना और बाहुबली अपने मित्र के स्वागत में आँख पसार कर बैठ गये। कुछ ही देर में बज्रबाहु डेरे में आये। अपने विलगमित्र को सम्मुख देखते ही बाहुबली ने अपनी बाहें फैला दीं। ''हम अपने प्रियमित्र का स्वागत करते हैं।''

वज्रबाहु ने उन बढ़ी हुई बाँहों को थामते हुए कहा– ''इतनी सेनाएँ! ये सब क्या हमारे ही स्वागत के लिए आई है।''

बाहुबली की पलकें एक क्षण के लिए लज्जा से झुक गईं, फिर कर्तव्य का तेज लेकर वे ऊपर उठीं–''महाराज वज्रवाहु का मित्र अयोध्या का राजकुमार भी है। ये अयोध्या की सेनाएँ हैं, महाराज वज्रबाहु के मित्र की नहीं। मैं मजबूर हूँ, बन्धु! म `रे हाथ बँधे हुए हैं।''

वज्रबाहु ने उपेक्षा से कहा, ''नहीं, मालूम होता है वैजयन्ती की राजकुमारी की रूपगरिमा अयोध्या तक भी जा पहुँची हैं और अयोध्या के

राजकुमार बाहुबली उस रूप–गरिमा पर मुग्ध हो गए हैं।''

''नहीं, नहीं, यह बात नहीं, वज्रबाहु।'' बाहुबली ने जल्दी से इस आरोप का निराकरण करना चाहा–

वज्रबाहु ने अपने संशय की पुष्टि की– ''क्यों हो सकता है राजनन्दिनी के बिना अयोध्या के राजमहल सूने ही रह जायँ।''

बाहुबली इस व्यंग्य से गंभीर हो गए। उन्होंने तनिक गुरू स्वर में कहा– ''आप भूल रहे हैं, महाराज वज्रबाहु! क्या आपको बाहुबली की आँखों में रूप की प्यास दिखाई देती है। मैं फिर कहता हूँ, कि आप भूल कर रहे हैं, महाराज वज्रबाहु! आपको भारी भ्रम हुआ है। बाहुबली कभी भी अपने मित्र का प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो सकता।''

''यदि तुम मेरे प्रतिद्वन्द्वी नहीं हो तो संसार की कोई शक्ति मुझसे राजनन्दिनी को नहीं छीन सकती,'' और वज्रबाहु ने बाहुबली के थामे हाथ अपने गले में डाल लिए। उस अकाट्य मैत्री की निकटता उसकी आँखों में कौंध गई।

बाहुबली ने मित्र की प्रसन्नता से प्रसन्न होते हुए कहा– ''तुम्हें अपनी प्रेयसी मिले, मुझे इसकी खुशी होगी; किन्तु अनीति से मिले, इसका दुःख होगा। दुःख ही नहीं, मेरा अपमान भी होगा। और तुम जानते हो मित्र, कि नीति और कर्त्तव्य मित्रता से बड़े होते हैं।''

''तब हमारे मित्र को कुछ सोचना पड़ेगा। तुम्हें देखना होगा कि अनीति हमारी ओर से है या वैजयन्ती के उस बूढ़े नरेश की ओर से। वह कौशाम्बी के उस कायर युवराज से उस हीरे का गठबंधन करना चाहता हैं। वह महलों को छोड़कर झोपड़ी के ऊपर कलश चढ़ाना चाहते हैं।'' वज्रबाहु ने गंभीर बन कर कहा–

''पिता को अधिकार है जहाँ चाहे अपनी पुत्री का विवाह करे।'' बाहुबली ने उत्तर में कहा–

वज्रबाहु ने कटुता मिश्रित स्वर में कहा–''काश कि वह अपना यह निर्णय अपनी पुत्री पर छोड़ देते। तब वह सोच सकती, कि वह महलों का रत्न बने या झोंपड़ी का कंकर।''

इतना विश्वास! तो क्या राजनन्दिनी भी वज्रबाहु की ओर उतनी ही आकर्षित है यदि यह भी वज्रबाहु को प्रेम की दृष्टि से देखती है, तो वैजयन्ती–नरेश क्यों उनकी राह का काँटा बनना चाहते थे, क्यों राजनन्दिनी वज्रबाहु से पीछा छुड़ाकर इस प्रकार अपने मामा के यहाँ चली जाना चाहती थी। हो सकता है यह केवल पिता का प्रभाव हो। तभी तो वह तुरन्त वापस लौट चलने के लिए तैयार हो गई। यदि यही बात है, तो समस्या का हल दूर नहीं है। समझौते की आशा निकट है।

वज्रबाहु के कन्धों पर अपनी बाहुओं को स्नेह से दबा कर बाहुबली ने कहा– ''यदि तुम यही चाहते हो, कि सारा निर्णय राजकुमारी पर छोड़ दिया जाये, तो यही होगा, बंधु! किन्तु तुम्हें अपनी सेनाओं का घेरा उठा लेना होगा और मैं वैजयन्ती–नरेश का हाथ तुम दोनो के बीच में से हटा दूँगा। किन्तु...।''

वज्रबाहु, बाहुबली की इस किन्तु–परन्तु को समझ गया। उसने बीच में ही बाहुबली को संकोचमुक्त करते हुए कहा– ''किन्तु यदि राजकुमारी ने मुझे फिर भी स्वीकार न किया, तो मुझे आक्रमण का अधिकार न होगा, यही न ? मैं इस बन्धन को स्वीकार करता हूँ। मुझे राजकुमारी पर विश्वास है।''

वज्रवाहु को राजकुमारी की बुद्धि पर विश्वास था। बाहुबली ने इसे इस रूप में लिया कि उसे राजनन्दिनी के हृदय पर, उसके प्रेम पर विश्वास है। और यात्रा के बीच में राजनन्दिनी की ओर से उसके हृदय में जो एक नन्हा–सा क्षणिक स्फुर्लिंग जल उठा था, वह अनुकूल हवा न पाकर, जल के ऊपर बुलबुल की नाई तिरोहित हो गया।

बाहुबली की युक्ति पर यकीन करके वज्रबाहु ने अपना घेरा उठा लिया। अगले दिन सुबह स्वयं बाहुबली के संरक्षण में राजकुमारी राजनन्दिनी ने वैजयन्ती के गढ़ में प्रवेश किया। यह ग्रह–प्रवेश कितना सुखद था, यह केवल वही जान सकता है, जो बलात् अपने देश से निर्वासित होकर पुनः उसके द्वार पर आया हो।

समझौता हो गया। वैजयन्ती–नरेश ने अपनी पुत्री राजनन्दिनी का विवाह कौशाम्बी के युवाराज से करने का विचार छोड़ दिया। उन्होंने आश्वासन दिया, कि वह उचित समय पर विधिवत् राजनन्दिनी का विराट् स्वयम्बर करेंगे, जिसमें राजकुमारी को अपनी इच्छानुसार अपना वर आप चुन लेने की सुविधा होगी। वज्रबाहु ने यह वचन लेकर अपने मित्र से विदा ली और फिर कभी अपने आमन्त्रण पर बाहुबली से आने का वचन लेकर उसने अपनी सेना–सहित अपनी राजधानी रतनपुर की ओर कूच बोल दिया।

एक बार वज्रबाहु ने राजनन्दिनी को बचाने के लिए महागंगा में अपने प्राण संकट में डाले थे। वैजयन्ती–नरेश अपनी झूठी आन के अभिमान में आज इस तथ्य को भूल सकते हैं, किन्तु वज्रबाहु तो प्रयत्न करके भी उस दिन से आज तक राजनन्दिनी की छवि को नहीं भूल सका था। उस पर एकमात्र वज्रबाहु का ही अधिकार हैं; वही है, जिस पर राजनन्दिनी अपने तन–मन को न्योछावर कर सकती है, यही वज्रबाहु का विश्वास था। स्वयम्बर आये, तो वह देखेगा कि किस प्रकार परोपकार की भावना से ओत–प्रोत राजनन्दिनी उसके उस उपकार को भूल सकती है।

4

आज दूसरी बार बाहुबली ने राजनन्दिनी की रक्षा की थी। इतनी सुगमता से मामले को निबटा कर उन्हें अयोध्या वापस लौट जाने नहीं दिया जा सकता था। वज्रबाहु के कूच करते ही जब बाहुबली की सेनाएँ भी कुच करने लगीं तो वैजयन्ती–नरेश का विधिवत् निमन्त्रण मिला। सेनाओं को विदा करके बाहुबली को कुछ दिनों वैजयन्ती का राज–अतिथि बन कर रहना ही होगा, यही उस निमन्त्रण का मूल उद्देश्य था, जिसे राज्योचित भाषा के आवरण में छिपा कर निमंत्रण में प्रकट किया गया था।

वृद्ध वैजयन्ती–नरेश तो बाहुबली के रूप–गुण को देखते ही मुग्ध हो गये थे। अवसर सम्मुख ही आया जानकर उनके मन में एक क्षीण–सी भावना निरन्तर बलवती होती जा रही थी। यदि किसी प्रकार बहुबली और राजनन्दिनी का सम्बन्ध हो जाए, तो साक्षात् कामदेव और रति की जोड़ी मिल जाए। किन्तु कहाँ वैजयन्ती! बार–बार यही विचार उनके मन में कौर के तिनके की तरह अटक जाता था।

असीम आदरसहित महाराज पद्मसेन अयोध्या के कुमार को अपने राजमहल में ले गए। वहाँ जिसने भी उन्हें देखा वह ठक् से रह गया। इतना रूप! क्या कभी यह रूप मनुष्य में भी हो सकता है ? उसके साथ अपूर्व शारीरिक बल की मिलावट ने जैसे सोने में सुहागा भर दिया था। दास–दासियाँ, सखी–सहेलियाँ सभी एक बार उन्हें देखकर दोबारा देखने का अवसर ढूँढ़ने लगीं।

मुखरा उछलती–कूदती राजनन्दिनी के पास पहुँची– ''लो, वह आ गए!''

''कौन आ गए ?'' राजकुमारी ने अचकचाकर पूछा–

''अजी, वहीं वन के देवता। अयोध्या के राजकुमार, हमारी भोली–भाली राजकुमारी की भावनाओं के हार। क्या नाम भी बताऊँ ?''

रोष प्रकट करती हुई राजकुमारी ने मुखरा का मुहँ पकड़कर भींच दिया और वह अपनी हँसी को जबरदस्ती नाक की राह निकालती रही। किन्तु शीघ्र ही उसे इस मुसीबत से छुट्टी मिल गई। इतनी देर में तो राजनन्दिनी की चंचल भावनाएँ उसे कहीं–की–कहीं बहा ले गईं और उनके हाथों की पकड़ कब छूट गई, मालूम ही न हो पाया। मुखरा छूटकर फिर द्वार पर पहुँची, वापस मुड़ी और शीश नवाकर उसके अभिवादक के तौर पर कहा: ''राजकुमारी की बलिहारी जाऊँ, वह आ गए हैं!''

और जब तक चौंककर राजनन्दिनी अपनी दृष्टि उस ओर करे मुखरा वहाँ से लोप हो गई और द्वार खाली था।

चाह और चाव ने उन 'वह' को देखने के लिए राजकुमारी शीघ्रता से उठी; अपने वस्त्रों का मनोनुकूल परिर्वतन किया और बाहर की ओर झपटी। किन्तु द्वार पर ही वह किसी के कन्धों से टकरा गई। उच्छृंखल मुखरा को दण्ड देने के लिए ज्यों ही उसके ऊपर की ओर निहारा उसकी तस्वीर बाहुबली की आँखों में खिंच गई।

उस तस्वीर में लज्जा थी, भय था, कौध था और था संकोच। पीछे पिता की वयोवृद्ध मूर्ति दृष्टिगोचर हो रही थी। नमस्कार करने के लिए

राजनन्दिनी के हाथ उठे और साथ ही दृष्टि भी, और चन्द्र–किरणों से आहत–चकवी की तरह उसके मन का कोना–कोना बिंध गया।

बाहुबली ने उस अलभ्य क्षण में न जाने क्या–क्या दर्शन कर लिया। गौरवर्ण मुख पर कनपटी से गालों तक लाली छा गई थी। श्यामकुन्तलकेश वातायन से आते हुए वायु के झोंको से थिरक–थिरकर राजकुमारी के विस्तृत और उत्तप्तमस्तक पर थपकीयाँ दे रहे थे। केले की गोभ–सी सुडौल बाहें, लज्जा से परिधानों की चंचलता का व्यस्तता से उपचार करती हुई, नमस्कार की मुद्रा में जुड़ गई थीं। वह दैवी सौन्दर्य निश्चयतः इस पृथ्वी के ऊपर की वस्तु थी।

वह बाहुबली, जिन्हें देखकर स्त्रियाँ कामबाण से दग्ध हो जाती थीं, आज स्वयं एक अल्हड़ नवयौवना के केशपाश में मानों एक क्षण के लिए उलझ–से गए थे। उस क्षण में दोनों ने ही एक–दूसरे के आँखों की मौनभाषा को पढ़ लिया और फिर तुरन्त अपनी–अपनी निगाहें नीची कर लीं।

इस अलभ्य मौन को महाराज ने तोड़ा "कहीं राजकुमारों का अभिवादन ऐसे किया जाता है, बेटी? जाओ, आरती का प्रबन्ध करो। आज हमारे महलों में इक्ष्वाकु–वंश का सूर्य चमका है। मंगल–गान हों, और हमारा राजमहल आज दीपावली मनाएं।"

और यह सुनते ही राजनन्दिनी के पैरों में मानों कल लग गई। पुत्री की विलीन होती हुई आकृति को देखते हुए वैजयन्ती–नरेश मुसकराते हुए बाहुबली को साथ लेकर अपना राजमहल दिखाने के लिए आगे चले। उन्होंने कहा– "राजमाता के अकाल के गाल में चले जाने से सारी वैजयन्ती इस मातृहीनदीपक से जगमगा रही है।"

"बड़ा चंचल दीपक है!" बाहुबली ने मुसकराकर कहा और इस बात को लेकर बहुत देर तक वैजयन्ती–नरेश हँसते रहे।

मुखरा ने पहले ही आरती का प्रबन्ध करा लिया था। कुछ दूर आगे बढ़ते ही बाहुबली आरतियों से घिर गए और इन आरतियों के प्रकाश में उन्होंने फिर एक चमकते हुए मुख को देखा। किन्तु कुछ ही क्षणों में बाहुबली की मुखमुद्रा गम्भीर हो गई। कुछ विचार आये और उनके मस्तिष्क में जमकर बैठ गए।

राजनन्दिनी वज्रबाहु की है। वह अमानत है। उसकी ओर मोह–दृष्टि से देखने से कुछ हाथ नहीं लगेगा। केवल एक कलंक का टीका उनके माथे पर लग जाएगा। सोचते–सोचते उनकी दृष्टि उपेक्षा से भर उठी।

आरती समाप्त हो गई। विश्राम के लिए बाहुबली को साथ लेकर महाराज पद्मसेन उनके लिए नियत कक्ष में गए। कक्ष सुगन्धि से महक रहा था। झाड़फनूसों का प्रकाश एक कोमल शय्या पर बिखर रहा था। साफ और स्वच्छ वातावरण नीरवता को साक्षी करके विश्राम का आह्वान कर रहा था। चारों ओर की दीवारों पर लगे भित्ति–चित्रों में अकिंत वन पशु मानों इसी कारण जड़ हो गए थे। एक चित्र में कुलाँच भरता हुआ हिरण और उसके पीछे भागती हुई हिरणी की मृदु आकृतियाँ अंकित थीं।

महाराज पद्मसेन ने कुछ समय के लिए विदा करने का उपक्रम करते हुए कहा–''कुमार विश्राम करें। परिचारिकाँए सेवा में हर समय उपस्थित रहेंगी।''

वैजयन्ती–नरेश चले गये। बाहुबजी निढाल होकर शय्या के एक कोने पर बैठ गए। बार–बार उनका ध्यान उस हिरणों के चित्र की ओर जाता था। इन हिरणों से उनकी दशा कितनी मिलती–जुलती थी! वह भी तो राजनन्दिनी से दूर–दूर भागे जा रहे थे। और...और क्या राजनन्दिनी उस हिरणी की भाँति ही उनका पीछा कर रही थी ? नहीं, नहीं, वह स्वयं उनके मन का धोखा है, उनके स्वयं के विचारों का प्रतिबिम्ब है। राजनन्दिनी हृदय से वज्रबाहु के अधीन हो चुकी है।

उन्होंने सिर को एक साधारण–सा झटका दिया और वास्तविक संसार में उतर आए। परिधान उतारकर आधारों पर टाँग दिए और शय्या पर अपने पैर फैलाकर आँखें मूँद लीं। लेकिन पलकों में तो एक ही तस्वीर मानो बहुत गहरी होकर खुदी हुई थी। पलकें आखों के ऊपर आते ही वह सामने आ गई। यह निश्चयतः वैजयन्ती की राजकुमारी का पीछा करता हुआ–चित्र था।

उन्होंने आँखे खोल दीं। उनके ठीक सामने की भित्ति पर लगा हुआ दर्पण उन्हें प्रतिबिम्बित कर उठा और उन्हें अनुभव हुआ कि उनके चेहरे पर आवश्यकता से अधिक थकावट के चिह्न थे। एक बार आँखें बन्द करके उन्होंने फिर दर्पण को देखने के लिए आँखें खोलीं। लेकिन इस बार वह चौंक गए।

दर्पण में उनके चित्र के पीछे एक और चित्र था। वह स्पष्टतः राजनन्दिनी का चित्र था, जो द्वार की ओट से उनकी ओर देख रही थी। उन्होंने अचकचा कर द्वार की ओर देखा। किन्तु वहाँ कोई नहीं था। केवल लोप होते हुए आँचल का एक भाग दिखाई दिया था। हो सकता है यह उनका भग्न हो। आज भ्रम ने उन्हें बहुत सताया था। वह अपनी मनोदशा पर स्वयं मुस्कराए और आँखें मींचकर सो जाने का उपक्रम करने लगे।

थोड़ी ही देर में निद्रा की सुखद छाया ने उनकी दुविधा का अन्त कर दिया।

पास ही स्थित कक्ष में राजनन्दिनी मुखरा के साख एक अत्यन्त महत्वपूर्ण वार्तालाप में व्यस्त थी। राजकुमारी ने अपने मुँह को हाथों में छिपाते हुए कहाः

''मैं अपने को नहीं रोक सकी। क्या कहेंगे वह अपने मन में! उन्होंने दर्पण में मुझे देख लिया था।''

''कहेंगे क्या ? सोचेंगे, दर्पण भी सजीव हो गए है,'' मुखरित किया–

''वह मुझे निर्लज्ज समझेंगे,'' राजनन्दिनी ने आशंका प्रकट की–

''पुरूष क्या कम निर्लज्ज होते हैं ?'' मुखरा ने प्रश्न किया। ''कैसे तो घूर–घूरकर देख रहे थे आरती के समय!''

''किसे, तुझे ?'' हँसी होंठो पर लाकर राजकुमारी ने कहा–

''मैंने उनका क्या छीन लिया है, जो मुझे देखेंगे ? वह तो अपने चोर की ओर देख रहे थे। अयोध्या वालों से जाकर कहेंगे, वैजयन्ती में मन चुरालेने वाले चोर बसते हैं। फिर किसी दिन फौज सपाटा लेकर अपने चोर को पकड़ने आएँगे और ले जाएँगे पकड़कर, बस इतनी–सी तो बात है,'' मुखरा ने अपनी धवल दन्तपंक्ति दिखाते हुए कहा–

''धत्, पगली!'' राजकुमारी सहसा गम्भीर होकर बोली,''उनके मुख के भाव तो पढ़े ही नहीं जाते। न जाने जरा–जरा–सी देर में क्या सोचने लगते हैं!''

''यही सोचने लगते होंगे कि जिसकी ओर देखा जा रहा है, वह भी अपने को चोर समझता है या नहीं। प्रेम में अभियुक्त अपराध स्वीकार न करे, तो अभियोग नहीं चल सकता, राजकुमारी।''

''और यदि उन्हें ही अपने नुकसान का भान न हो, तो ?''

''तो वह पुरूष नहीं हैं, नट हैं, अयोध्या के रसिक राजकुमार नहीं है...''

राजकुमारी ने अपने हाथों से मुखरा का मुँह बन्द कर दिया–''तेरे मुँह में आग, वाचाल.... ।''

मुखरा दर्द से कराह उठी–''क्षमा, राजकुमारी जी क्षमा चाहती हूँ!''

राजकुमारी ने उसका मुँह छोड़ दिया। अपने मरोड़े हुए गाल सहलाती हुई मुखरा बोली–''अब नहीं कहूँगी। आप परीक्षा कर लीजिए न उनकी।''

''कैसे ?'' राजकुमारी ने उत्सुकता से पूछा।

''बड़ी आसान तरकीब है। उनके पास अपनी मुद्रिका भेज दीजिए। अपनी चोरी का मूल्य उन्हें स्वीकार होगा, तो रख लेंगे, नहीं तो वापस कर देंगे।''

''जो वापस कर दी, तो ?'' राजकुमारी ने प्रार्थना प्रकट की–

''तो वह....तो वह....जाने दीजिए नहीं कहूँगी,'' और फिर वह अपना मुँह सहलाने लगी–

''कितनी लज्जा की बात है!'' राजकुमारी ने कहा, ''वह सोचेंगे वैजसन्ती की राजकुमारी लज्जाहीन है, ओछी है।''

''नायिका का आमन्त्रण पाकर यदि नायक यही सोचने लगें, तो संसार से प्रेम का व्यापार ही उठ जाए। फिर मुद्रिका ऐसे ही न भिजवाई जाए। इस तरह से भेजी जाए कि उन्हें लगे कि गलती से आ गई हैं। कलेवे के लिए जो फल जाएँगे, उन्ही के बीच में एक ओर को पड़ी हो मानो फल लगाते हुए गिर

पड़ी हो। नायक तो ऐसे अवसरों की खोज में ही रहते हैं।

राजकुमारी की आँखों में एक चमक आ गई, और वह मुखरा को दोनों बाहों में थाम कर नाच गई। "ऐसा ही हो!"

सुन्दर चित्रित स्वर्णपात्रों में फलों के कलेवे का योजनानुसार प्रबन्ध करके राजकुमारी धड़कते हृदय से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगी। कब सुबह हो, कब बाहुबली उठें और फलों की ओर उनकी निगाह जाये। फिर यदि उन्होने फल न खाए। यदि मुद्रिका छोड़े हुए फलों के नीचे ही दबी रह जाए, तो क्या होगा ? सारी योजना पर पानी फिर जायगा। कितनी मधुर और कितनी कूर आशंकाओं से भरी हुई है यह योजना!

5

बाहुबली रात–भर स्वपन देखते रहे। स्वपन अस्वस्थताकी देन है। सोते–सोते भी उनका मन वैजयन्ती के राजमहलों में चक्कर लगा रहा था। वह उन आकृतियों को ढूँढ़ रहा था, जिनके हाथ में दीपकों और कुंकुम के थाल थे और जिनके बीच में एक अप्सरा, सलज्ज नयन, अपने देवता की आरती उतारने में मग्न थी। यही वह अल्हड़बाला थी, जो अपने में खोई, कक्ष से तेजी से निकली थी और उनके कन्धों से अनायास ही लगी थी।

प्रातःकाल हुआ और महल के किसी अज्ञात कोने से भैरवी का गान आरम्भ हुआ। धीरे–धीरे मधुर स्वरों में खोता हुआ संगीत महल के सोने वालों को जगाता रहा और बाहर के उद्यान के वृक्षों से वन की स्वतन्त्र और स्वाभिमानी चिड़ियों का कलरव राजमहल तक आ रहा था।

बाहुबली एकदम उठ बैठे। कितनी गहरी, विश्रृंखलित और अटूट नींद उन्हें आई थी। इस नींद में उन्होंने अद्‌भुत–अद्‌भुत स्वपन देखे थे। उन स्वपनों में उनकी दिन–रैन की चिन्ता की प्रतिमूर्ति ही मानों विराट होकर समा गई थी।

उन्होंने एक उचटती हुई दृष्टि स्वर्ण–चौकी पर रखे फलों के पात्रों की ओर ड़ाली। इतने में एक दासी ने आकर पाद–प्रक्षालन किया और दूसरी ने

स्वच्छ वस्त्र से उन्हें कोमलता के साथ पोंछ दिया। बाहुबली उठे।

कुछ समय बाद वह कक्ष में वापस आए। स्नान से उनका कमनीय–बदन दमक उठा था और कमरा मधुर गन्ध से सुवासित किया जा चुका था। सारे वातावरण में जैसे पवित्रता साकार होकर निखर आई थी।

दासी ने चौकी उनके सामने लाकर रखी और फलों की ओर इंगित करके उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया–''हमें कृतार्थ कीजिए, देव।''

दासी न जाने क्यों चली गई। अंगूरो का गुच्छा उठाया और कुछ सोचते हुए एक अंगूर तोड़कर मुँह में रखा। फिर धीरे–धीरे बिना उस ओर दृष्टि किए दूसरा, तीसरा.....सहसा वह चौक उठे। बरतन में किसी धातु के गिरने का मन्द–सा स्वर सुनाई पड़ा। देखा, तो यह एक अँगूठी थी, जो शायद किसी अंगूर में उलझी हुई थी और अंगूर के गुच्छे से अलग होते ही निराधार होकर स्वर्णपात्र में गिर पड़ी थी। मुखरा की योजना असफल होने वाली नहीं थी। उसमें चातुर्य की यथेष्ट पुट था।

विस्मय के भाव से उन्होंने मुद्रिका अपने हाथ में उठा ली। उस पर बहुत ही बारीक, अलक्ष्य रूप से, हीरकआभा मंड़ित अक्षरों में लिखा था, 'राजनन्दिनी'

अंगुर का गुच्छा हाथ से छूट पड़ा। कैसे आई यह अंगूठी इन फलों में ? अवश्य ही राजनन्दिनी ये फल अपने हाथों से चुने होंगे। कितना सम्भव है कि मुद्रिका बिना अपनी स्वामिनी की इच्छा या आज्ञा के, फलों के स्वर्णपात्र में गिर पड़ी हो। हो सकता है अंगूरों के किसी डंठल में उलझकर राजनन्दिनी की यह ढीली–ढीली मुद्रिका अपनी स्वामिनी को चुपचाप त्यागकर चली आई हो।

किन्तु इसके अतिरिक्त क्या कोई दूसरी सम्भावना भी हो सकती है ? बाहुबली दृढ़ चरित्र और दृढ़ विचारों के व्यक्ति थे। अपने मन के विचारो की प्रतिच्छाया मनुष्य को क्या से क्या सोचने को बाध्य करती है, यह वह जानते थे। राजनन्दिनी के रूप का मोह उन पर अपना प्रभावपूर्ण रूप से जमाने की चेष्टा कर रहा था। यदि वह जरा–सी ढील दें, तो स्वयं अपने ही विचारों से मूढ़ बनने में उन्हें देर न लगे। वही राजनन्दिनी, जो उन्हें अब तक अपना तथा वैजयन्ती का त्राणदाता समझती है, उन्हें कितनी घृणा की दृष्टि से देखने

लगेगी! नहीं, अपने उपकारों का यह मूल्य माँगना उनके लिए किसी दशा में शोभाजनक नहीं है। क्या कहेगा उनका परम मित्र वज्रबाहु! कितने व्यंग्य से उसने कहा था कि शायद राजनन्दिनी के बिना अयोध्या के राजमहल सूने ही रह जायें, कि राजनन्दिनी के रूप की गरीमा अयोध्या तक जा पहुँची है! ओह, अविश्वास की आँच और सब प्रकार की अग्नि से अधिक असहनीय है!

उन्होंने और फल नहीं चखे। एक बार मुद्रिका को उन्होंने जी भर कर देखा। राजनन्दिनी का अलक्ष्य चित्र उनकी दृष्टि के सामने सलज्ज मुद्रा में साकार हो उठा। उनकी आँखें स्वयं अपने ही प्रति करूणा से भर उठीं, और उन्होंने बिना कुछ विलम्ब किये मुद्रिका को स्वर्णपात्र में वापस रख दिया। कितनी वेदना छिपी थी नायिका की इस मुद्रिका का लौटाने में, यह केवल बाहुबली ही अनुमान लगा सकते थे।

दासी आई और बचे हुऐ फलों के स्वर्णपात्र को उठाकर चली गई। दूसरी परिचारिका ने आकर बाहुबली के हस्त प्रक्षालन कराये, और तदनंतर उन्होंने उसे आदेश दिया कि वह उनके अंगरक्षक वीरसिंह को उनके सम्मुख उपस्थित करने का प्रबन्ध करे।

वीरसिंह आया। बाहुबली ने उसकी ओर देखकर कहा–''वीरसिंह, हम अयोध्या वापस जाएँगे, आज ही। हमारी ओर से महाराज पद्मसेन से आज्ञा ले लो।''

वैजयन्ती–नरेश वीरसिंह की प्रार्थना सुनते ही सिर के बल दौड़े आए। चिन्तातुर स्वर में उन्होंने बाहुबली की कुशल–क्षेम पूछी, अपना अपराध पूछा, जिससे यहाँ से उनका सम्मानित अतिथि इस प्रकार अचानक ही पलायन का प्रस्ताव करे।

बाहुबली ने उन्हें आश्वासन दिया कि सब–कुछ ठीक है, किन्तु उनका अधिक ठहरना अयोध्या के नागरिकों को चिन्ता में डाल सकता है। विजय के लिए गये हुए राजपुरूष अधिक दिनों तक बाहर नहीं ठहरा करते।

बाहुबली के ससम्मान जाने का प्रबन्ध कर दिया गया। किन्तु अपनी मुद्रिका हाथ में लिए एक कक्ष में बैठी राजनन्दिनी रोती रही।

6

अयोध्या में नूपुरों की ध्वनि तथा कलाओं का प्रदर्शन भी पीछे नहीं था। सितारों की रानी नीलांजना ने यह मोर्चा सँभाल रखा था। जब उसके पग उठते, वीणा क्षणिक अवकाश के क्षण सजीव कर देती। जब उसकी अंगुलियाँ भू को चूमतीं, मृदंग आप ही आप उछल पड़ता। उसके घुँघरूओं की मधुर–ध्वनि जीवन–गति की रूनझुन का दूसरा रूप था। नीलांजना कला को स्वयं मोहित करने की कला जानती थी।

बाहुबली ने जिस शांति और स्थिरता से, बिना युद्ध किये ही वैजयन्ती पर आये हुए संकट को टाल दिया था, अयोध्या में इसका अपूर्व स्वागत हुआ। इस स्वागत के उपलक्ष में उस दिन महाराज ऋषभदेव के विस्तीर्ण और विशाल दरबार में उसी यौवन की चटखनी कली नीलांजना का नृत्य आयोजित हुआ था। उपस्थित होने वाले लोगों के मन पहले से ही उसकी थिरकन का अनुभव करके थिरक रहे थे।

निशा का प्रथम प्रहर बीत गया था और महाराज ऋषभदेव का भव्य दरबार रत्नमयी झाड़फानूसों के प्रकाश से आलोकित हो रहा था। सुन्दरी नीलांजना के दीपशिखा–नृत्य की चर्चा थी। एक और एक ऊँचे आभापूर्ण सिंहासन पर स्वयं महाराज ऋषभदेव विराजमान थे। उनके दोनों ओर दो रत्नजटित सिंहासनों पर भरत और बाहुबली शोभित हो रहे थे। कुमकुमों का प्रकाश अंधकार के साथ निशा–सुलभ आँख–मिचौनी खेल रहा था।

महाराज ने इंगित किया, और समस्त राजपुरूषों के नेत्र एक द्वार पर जाकर टिक गये।

पट खुल गए। पीछे के अंधकार में केवल एक दीपशिखा के दर्शन हुए। वह दीपशिखा मंद वायु के एक झोंके से मानो लहराई, थिरकी और घुंघरूओं के एक अनवरत कंपन के साथ नीलांजना सभा के बीच आ खड़ी हुई। उसके हाथ में रत्न–दीप था। उसकी दीपशिखा मानो लाज से सिमटी–सिकुड़ी जा रही थी। गुलाबी वेशभूषा में हल्की लाल धारियों से नीलांजना स्वयं एक चिरयौवना दीपशिखा–सी लग रही थी।

मंथर गति से नृत्य आरम्भ हुआ। दीप्रशिखा ने अलसा कर एक अंगड़ाई ली, आँखें मींच कर जैसे बीती नींद की अनुभूति का स्पर्श किया। फिर एक झटके के साथ सारा अलस–भाव तिरोहित कर वह लहराने लगी, थिरकने लगी, और नृत्य–गीत समभाव पर प्रवाहित हो चला। सभी वाद्य–ध्वनियाँ एकाकार होकर रूपसी दीपशिखा का मनोरम अभिनन्दन करने लगी।

समाँ बँध गया था। संगीत के रस में अपने समस्त विषम भावों को एकाग्र करके श्रोतादर्शक मन्त्रमुग्ध हो चले थे। दीपशिखा का चेतन वेग तीव्रतर हो चला था। प्रधान दर्शक महाराज ऋषभदेव गुणग्राहक स्थिति से कला का आत्मनिवेदन ग्रहण कर रहे थे।

सहसा यह क्या हुआ! दीपशिखा का तीव्रतर होता हुआ नृत्य जैसे एकदम जड़ हो गया। वाद्यों की गति एक पग आगे बढ़कर रूक गई। महाराज ऋषभदेव के साथ–साथ सारे सभासद चकित होकर उठ खड़े हुए। नीलाँजना का शरीर बैठ रहा था, और उसकी आँखों की पुतलियाँ स्थिर हो गई थीं। दो क्षण चित्रलिखित–सी सुन्दरी लावण्यमयी नीलाँजना स्थिर खड़ी रही और जब तक उसकी विशिष्ट परिचारिकाएँ झपट कर उस तक पहुँचें, वह बड़े जोर से डगमगाई, और कटे वृक्ष की नाईं भूमि पर गिर पड़ी। सबके देखते–देखते उसके प्राण उसके छटपटाते शरीर से उन्मुक्त होकर अनन्त में विलीन हो गए।

नीलांजना, नृत्यों की मलिका, संगीत–साम्राज्ञी नीलांजना का निश्चय शरीर और मृत्यु को चुंबन किये हुए उसके निराभ्र होंठ महाराज ऋषभदेव के अवसन्न विचारों में डूब–उतरा रहे थे। कहाँ था अब वह रूपयौवन ? कहाँ थी अब वह मदमाती थिरकन ? कहाँ था अब वह मोहों का स्पन्दन ? सब जैसे जीवन की क्षणभंगुरता का प्रदर्शन करके क्षण–मात्र में क्रूर कालको समर्पित हो गये थे।

अन्धकार के प्रकाश को ढाँक लिया था।

भरत और बाहुबली महाराज ऋषभदेव के निकट खड़े विस्मित भाव–से नीलांजना का दुखद अवसान निरख रहे थे। नर्तकी के हाथ का दीपक छूटकर भूमिपर जा गिरा था, और टेढ़े पड़े हुए दीपक की बाती अब भी ज्यों–त्यों जलने का उपकम कर रही थी, मानो का जीवन की बलवती इच्छा अपने अन्त समय में भी साकार मृत्यु को चिढ़ा रही थी। कलानेत्री की आत्मा इहलौकिक

कला को यहीं छोड़ कर पारलौलिक कला का आश्रय ग्रहण कर चुकी थी। कुछ देर में दीपक की ज्योति भी सर्वथा बुझ गई, मानो उसने दिखा दिया कि एक के बाद एक सभी को इसी अवश्यंभावी और अनिवार्य मार्ग का अवलम्बन करना है।

असीम हार्दिक वेदना के साथ महाराज ऋषभदेव के मुँह से निकलाः "शोक, महाशोक! मनुष्य के जीवन की डोर सचमुच कितनी कमजोर है!"

अगले दिन प्रातः ही अयोध्या के जन–जीवन में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआः

बालरवि की म्लान किरण नीलाकाश को छेद कर स्फटिक के समान श्वेत संगमरमर पर उतर आई थीं। राजमहल के उस कक्ष में भी दिन ने अपने आगमन की सूचना दी थी, जहाँ रात्री की दुःखात घटना को लेकर महाराज ऋषभदेव ने अनिद्रा में ही रात्रि व्यतीत कर दी थी।

राजमहल में उस रात किसी ने भी विश्राम नहीं किया था। महाराज ऋषभदेव के ऊपर पूर्व दिवस की दुर्घटना का मर्मान्तक प्रभाव हुआ था। जीवन की व्याख्या ही जैसे बदल गई थी। नीलांजना की जीवन–डोर के साथ–साथ महाराज ऋषभदेव का मोह का कच्चा धागा भी टूट गया था। संसार एक ऐसा बंधन लग रहा था, जिसमें फँसा हुआ कोई वीर स्वयं अपने तेज से अपने–आप जल रहा हो।

इन भावनाओं के अन्तर्गत उन्होंने अपना जो निश्चय प्रकट किया था, उसने केवल राज–परिवार में ही नहीं, सारी अयोध्या में हड़कंप मचा दिया था। उन्होने राजपाट त्याग कर वन–गमन की इच्छा प्रकट की थी। उन्होने जगत् सुखसमृद्धि, बन्धु–बान्धवों सभी का मोहपाश त्याग कर मोक्ष साधन करने की घोषणा की थी। और यह घोषणा, यह निश्चय एक ऐसे व्यक्ति के मानस से निकले थे, जो सदा ही अपने जीवन में अचल पर्वत की तरह अडिग रहा था।

राजरानियों की अनुनय–विनय असफल हो चुकी थी। प्रजा के मुखिया अपना–सा मुँह लटका कर चले गये थे। और इस समय चिंतातुर महामंत्री विचलित भरत महाराज ऋषभदेव के तेजपूर्ण मुख की ओर देखते हुए उन्हीं के कक्ष में मूढ़ से बने खड़े थे।

महामंत्री कह रहे थे–''इतनी छोटी–सी बात का आप के ऊपर इतना गहरा असर पड़ेगा, इसका स्वप्न में भी गुमान न था, महाराज!''

''आप अयोध्या में ही रह कर तप करें, पिताजी! कोई आपकी राह में रोड़ा नहीं अटकाएगा।'' भरत ने हाथ जोड़कर अपना उद्‌गार प्रकट किया–

महाराज कक्ष के बीचों–बीच शान्त मुद्रा से टहल रहे थे। उन्होंने भरत की बात का उत्तर दिया– ''जब तक हमारे मन में अयोध्या के निवासियों का मोह बना रहेगा, भरत! हमारी साधना सफल नहीं होगी। दिन चले जाते हैं; और दिन लौटकर नहीं आते।''

''ये तो दिग्विजय के दिन थे, संसार को जीवन के दिन थे, देव!'' महामंत्री ने दुःखित स्वर में कहा– ''युवराज भरत की दिग्विजय करने की प्रबल इच्छा थी।''

महाराज ऋषभदेव एक सूखी हँसी हँसे। सीधे मंत्री की आँखों में देखते हुए उन्होंने कहा– संसार को जितना आसान है, महामंत्री! अपने आपको जीतना कठिन है। जिन्दगी पानी का बुलबुला है। कल की रात देखा था न– तुमने, वह पानी का बुलबुला ? कितना तूमार बँधा हुआ था नीलांजना की कला का, उसके सौन्दर्य का! सब रेत के किले की तरह एक क्षण में ढह गया।''

''आपके जाने के बाद अयोध्या की प्रजा का क्या हाल होगा, देव ? वह रो–रोकर जान दे देगी।'' महांमत्री ने अन्य आशकाएं प्रकट की–

''मनुष्य आता है, तो जाता भी है। संसार का नियम कभी नहीं बदलता। हमारे जाने के बाद भी अयोध्या की प्रजा फलेगी, फूलेगी। भरत की छत्र–छाया के तले प्रजा सुखी होगी, और वह रोना–धोना भूल जायेगी।'' महाराज ने कहा–

हताश होकर महामंत्री ने सांसारिकता का पल्ला थामते हुए कहा– ''किन्तु, देव। राज्य का तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं हुआ है।''

''हमने उचित प्रबन्ध सोच लिया है, महामंत्री! हमारे वन जाने के बाद भरत अयोध्या का अधिपति होगा, बाहुबली युवराज होगा, और....''

किन्तु महाराज की बात बीच में ही रह गई। ''मुझे युवराज पद नहीं चाहिए। वह तो भैया भरत के कुमार का अधिकार है।'' कहते हुए बाहुबली प्रवेश द्वार के बीच खड़े दिखाई दिये–

''ओह, कुमार बाहुबली! तुम्हें हमारे निर्णय से आपत्ति है ?'' महाराज ने बाहुबली की ओर देखते हुए पूछा–

''आप संसार–बन्धन काटने जा रहे हैं, पिताजी! मैं ही क्यों बन्धन में रहूँ ? मैं भी आपके साथ वन में जाऊँगा ?'' बाहुबली ने कहा।

''हम बन्धनों से घबरा नहीं रहे हैं, बाहुबली! जान–बूझकर उनसे मोह तोड़ रहे हैं। तुमने तो अभी बन्धनों से मोह करना ही नहीं सीखा। तुम अपना मोह तोड़कर कैसे जा सकोगे ? नहीं बाहुबली! तुम नहीं जा सकोगे।''

''इस असार संसार में क्या कुछ सीखने के योग्य भी है, पिताजी ? यदि है, तो उसे कौन कब तक सीख सका है ? प्यास लगती है, तो मनुष्य पानी की ओर दौड़ता है, भूख लगती है, तो तरह–तरह के व्यंजनों से उसे मिटाता है। सब प्रकृति ने उसे सिखा–पढ़ाकर भेजा है। वह सीखता भी है, तो इस भूख–प्यास को मिटाने के नए–नए ढंग, जिन्हें अपना कर उसके संगी–साथी कुछ आगे बढ़ गये हैं। वह उनसे होड़ करता है, तो क्या वह सीखता है ? कँहा रह गया है मनुष्य के पास इतना अवकाश ? कँहा रह गई है उसके पास इतनी स्वतंत्रता कि वह कुछ सीख सके ? नहीं, देव! मैं सीखना नहीं चाहता। मै इस होड़ को तिलांजली देना चाहता हूँ। आप मुझे क्यों रोकेंगे, पिताजी ? आप तो स्वयं इस झंझट से अलग हो चुके है।'' बाहुबली पर जैसे भावों की मोहिनी छा गई थी।

महाराज उस मोहिनी का यही रूप समझ रहे थे। वह बाहुबली की भावना को देखकर स्वयं विस्मित थे। किन्तु भरत विस्मित ही नहीं था, भयभीत भी हो गया था। पिताजी चले जाएगें, बाहुबली चला जाएगा, फिर कौन रह जाएगा, जिसका सामीप्य अनुभव करके भरत इस ठोस धरती पर रहने का स्वांग रच सकेगा ? श्मशान किसको सुहाता है ? और अयोध्या का, इक्ष्वाकुवंश

का यह पुरातन परिवार भीतर से श्मशान ही तो बनने जा रहा था। सहसा ही भरत चौंकता हुआ बोल उठा, "नहीं नहीं–नहीं, बाहुबली, तुम नहीं जाओगे। यह न कहो, यहाँ कुछ सीखने के लिए नहीं है। तनिक मनकी आँखें तो खोलो, तुम्हें स्नेह के, प्रेम के वे अगाध रास्ते मिलेंगे, जिसमें चलने के लिए बहुत कुछ सीखना जरूरी है, बहुत कुछ जानना जरूरी है।"

भरत और बाहुबली का स्नेह अयोध्या में उदाहरण के तौर पर याद किया जाता था। यह स्नेह एक ऐसी दीवार था, जिसे अपनी दौड़ के जोश में बाहुबली लाँघना ही भूल गया था। दोनों भाई दो–दो पग आगे बढ़े, और भरत और बाहुबली एक दूसरे के गले लिपट गये। फिर बाहुबली अलग होकर बिना कुछ बोलेचाले ही, बिना किसी की ओर निगारे ही, वहाँ से मुहँ मोड़ कर चले गये।

महाराज और महामंत्री यह दृश्य देखकर मन ही मन मुस्करा उठे। एक अवांछित आँधी आकर गुजर गई थी।

महाराज ऋषभदेव किसी गहरे विचार में डूब गये। बाहुबली उदास है। क्यों उदास है ? वह बन्धन नहीं चाहता। कैसा बन्धन ? कौन–सा बन्धन ? एक समझे–बूझे पिता के नाते महाराज को यह पूर्ण विश्वास था कि बाहुबली ने तो अभी बन्धनों का सही रूप भी जाना–पहचाना नहीं है। भरत की एक मुद्रा से वह लाख के लावे की तरह पिघल गया। इसी से समझा जा सकता है कि बाहुबली उन बन्धनों से नहीं घबराता, जिन्हें कि वह अभी ठीक तौर से जानता भी नहीं। वह कोई दूसरा बन्धन है। शायद भरत की अधीनता का बन्धन। और ज्यों–ज्यों समय बीतता गया, महाराज ऋषभदेव का यह विचार दृढ़ होता गया। अन्त में उन्होने गम्भीर वाणी में कहाः

"महामंत्री, भरत, हमने अपना विचार बदल दिया है। बाहुबली भरत का युवराज नहीं होगा। वह उसका उत्तराधिकारी नहीं होगा। वह पोदनपुर राज्य का स्वतन्त्र स्वामी होगा।"

महामंत्री चौंक उठे, उन्होंने अधीरता से कहा–"अपराध क्षमा हो, देव! इस प्रकार राज्य को बाँटना उचित नहीं है। दो टुकड़ों में बँटकर अयोध्या की अजेयशक्ति हीन हो जाएगी।"

भरत भी अब तक चुप थे। सहसा ही बोल उठे–''आप दुनिया को छोड़कर जा रहे हैं, पिताजी, क्या मैं राज्य भी नहीं छोड़ सकता ? आप सारा राज्य अकेले बाहुबली को ही दें। उसे राजा देखकर मुझे प्रसन्नता होगी, देव!''

महाराज ने पुत्र को प्रशंसा की दृष्टि से देखा। फिर उन्होने कहा– ''यह अन्याय है, भरत! और असंभव भी है। हम जो कर रहे हैं उचित ही कर रहे हैं, महामंत्री! इसी के भीतर भविष्य की सुख–शान्ति छिपी है।''

''महाराज ठीक कह रहे हैं, किन्तु....'' महामंत्री की बात सहसा ही कट गई।

महाराज ने कहा–''हम तुम्हारी किन्तु परन्तु भी समझ रहे हैं। दो होकर भी अयोध्या का राज्य एक ही रहेगा, क्योंकि भरत और बाहुबली एक रहेंगे।''

अचानक भरत ने एक नया प्रस्ताव रखाः ''क्यों न हम दोनों ही मिल कर अयोध्या पर शासन करें, पिताजी ?''

''भरत!'' महाराज ने कहा–''बाहुबली के लिए तुम्हारा स्नेह अपूर्व है। किन्तु तुम अभी बच्चे ही हो। दो तलवारें एक होकर शत्रु का सामना कर सकती हैं, लेकिन दो तलवारें एक म्यान में नहीं रह सकतीं। बाहुबली तुम्हारा छोटा भाई है। तुम्हें यह बात सदा ध्यान में रखनी है, और हमें तुमसे केवल इतना ही कहना है।''

भरत ने पिता की आज्ञा के सामने सिर झुका दिया।

व्यक्ति जिस सांसारिक संपदा वैभव और विलास के लिए मरणांतक संघर्ष करता है उनके सहज–सुलभ होते हुए भी महाराज ऋषभदेव उन्हें तृण के समान त्यान कर चले गये। उन्होंने उस अमर साधना की ओर पग बढ़ा दिये जो स्वयं साधक को अमरत्व प्रदान करती है।

अयोध्या में अब बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था। युवक अधिपति पाकर लोंगो में उत्साह और उत्सव की सरिता उमड़ चली थी। खेलकूद, शस्त्र संचालन, और तन को बनाने वाले सभी कामों में अधिक रस लिया जाने लगा

था। भरत की इच्छा थी, कि उनके राज्य के प्रत्येक नगर–का प्रत्येक निवासी पहले योद्धा बने, बाद में और कुछ। तदनुसार मल्लयुद्ध के अखाड़ों में चहल–पहल दिखाई देने लगी थी।

सैन्य–संचालन, रथों का निर्माण कार्य, गजों और अश्वों की देखरेख, सभी पर महाराज भरत की सतत दृष्टि रहती। आज इनका निरीक्षण हो रहा है, तो कल उसका। अजेय चतुरंगिनी का निर्माण हो रहा था।

चंचल तुरंग के समान महाराज भरत का मस्तिष्क घूम रहा था। उनकी कल्पना पर साजश्रृंगार किये अश्व अपने हथियारबंद योद्धाओं को पीठ पर लिये चलते हुए भाले और तीरों की बौछारों के बीच तेजी से आगे बढ़ रहे थे। और दुर्ग पर दुर्ग विजय करती हुई भरत की अश्व–सेना, गज–सेना, रथ–सेना आगे ही बढ़ती जा रही थी। भरत के पैदल सिपाही जैसे उनके सहारे भरत की कल्पना के सारे दुर्गों पर छाते जा रहे थे।

रथों की कीलों पर पड़ती हुई हथौड़ों की चोटें तीव्र–से तीव्रतर होती चली गई। आदमी–आदमी जैसे यन्त्र हो गया, हाथी मदमत्त होकर चिंघाड़ने लगे। कुछ ही दिनों में चतुरंगिनी का साज सज गया।

और एक दिन शुभ मुहूर्त में भरत की यह अमर वाहिनी संसार–विजय के लिए कमर कसकर अयोध्या से निकल पड़ी। भरत ने संसार–विजय के लिए चला आता, अपना स्वपन साकार कर डाला। राष्ट्रगान गाती, कूदती–फाँदती यह विशाल सेना इस अपूर्व अभियान पर चलती रही, चलती रही। जो नरेश अधीनता स्वीकार कर लेता वह भरत का मित्र हो जाता, पर जो विरोध करने का साहस करता, पराजित होता, या उसका नाम–निशान इस धरती से सदा के लिए मिट जाता।

कुछ दिन बीतते–न–बीतते भरत एक भूकम्प बन गया।

7

वैजयन्ती से जिस व्यथा को बाहुबली मोल ले आये अभी उससे त्राण नहीं पा सके थे। राजनन्दिनी उनके मानसपटल पर आसन जमा कर बैठी गई थी। राजकाज के कार्यों के समय वह मूर्ति सदा उन्हें अपने प्रति सचेत रखती थी। अवकाश के क्षणों में बाहुबली उसकी मौन आराधना करते थे। बारम्बार उनका मन विरह से संतप्त होकर वैजयन्ती के राज्योद्यान, सरोवरों, और केलि–कुंजों से जा टकराता था।

वसन्त अपने साथ हरीतिका और पीतमा सखियों को लेकर आ गया। वह जैसे वियोगी की मुस्कराहट पर झूम उठा हो। बाहुबली को किसी करवट भी चैन न मिलता। उसी अवसर पर एक दिन रतनपुर का राजदूत आया। महाराज वज्रबाहु ने अपने मित्र को पुष्पक वन में वसन्त का आमोद–प्रमोद मनाने का निमन्त्रण भिजवाया था और उसके उस वचन की याद दिलाई थी, जो उन्होंने वैजयन्ती से वज्रबाहु के विदा होने के समय उन्हें दिया था।

बाहुबली को लगा कि मनोरंजन का यह साधन शायद उनके मन की अग्नि को दबा सके। वैजयन्ती न सही, वैजयन्ती के निकट का वन ही सही। उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। निमन्त्रण में वसन्त पंचमी का दिन ही नियत किया गया था।

जैसे पोदनपुर में, जैसे रतनपुर में, और जैसे पुष्पक वन में, उसी प्रकार वैजयन्ती में भी बसन्त पंचमी ने पदार्पण किया था। वह अपना नूतन साज सजाकर प्रेमियों से हृदय को त्रास देने आई थी। वसन्तराज भी तो वियोगिनी की मुसकराहट की तरह झेंप रहे थे। वह भी मानो पंचमी के लिए उतने ही व्याकुल थे, जितनी उनकी प्रिय तिथि उनके लिए प्रिया का वियोग प्रिय के लिए सबसे बड़ा दुःख जो है।

पिता से आज्ञा लेकर राजकुमारी राजनन्दिनी वसन्तोसव मनाने के लिए वन में आई। फूलों का मंडप सजाया गया। सखियों ने नृत्य–गान का आयोजन करके वसन्तराज के शुभागमन में अभ्यर्थना के थाल संजोये और कामदेव का अभिनेय–नाट्य रचा गया।

पुष्पों से वृक्षों की शाखाओं को झुका दिया गया। सखि–सहेलियों के कोमल किन्तु चतुर करों ने वन को कामदेव के उपवन की छटा प्रदान की थी। एक ओर कृत्रिम झरना बनाया गया था, जिसके उद्‌गम के टीले पर एक छोटा–सा राजसी उपकरणों से सजा हुआ आसन बिछा था। राजकुमारी इसी आसन पर बैठाकर सखियों के गीत–नृत्य देखने–सुनने लगी।

गीत की अनमोल पंक्तियों से वसन्त का अभिनन्दन किया जाने लगा। मधुर–हावभाव से नृत्य करके वैजयन्ती की सुन्दर ललनाएँ वसन्त के शुभ अवसर पर कामदेव का आह्वान कर रही थीं। तन्मय होकर राजनन्दिनी एकटक इस आह्वान को देख रही थी।

सहसा सामने की ओर से सचमुच ही कामदेव ही प्रकट हो गये। पीतवस्त्रों और पुष्पों का राजमुकुट पहने काम–देव के हाथ में फूलों के धनुषबाण थे और वह मन्द–मन्द मुस्करा रहे थे।

साकार कामदेव को देखते ही सखियों में नवीन उत्साह छा गया और सब झट–पट एक पंक्ति बनाकर खड़ी हो गई। अब कामदेव ने अपना धनुषबाण सीधा किया और लगे एक–एक पर बाण–वर्षा करने। जिसको भी बाण लगता, वह पंक्ति में से थिरक कर अलग हो जाती और अपने नृत्य का कौशल दिखाकर किसी वृक्ष की शाखा पर जा बैठती। इस प्रकार जब पंक्ति समाप्त हो चुकी जो कामदेव ने अपना आखेट ढूँढ़नें के लिए चारों ओर निगाह दौड़ानी शुरू की।

देखो तो कामदेव की दुष्टता! कहाँ जाकर नजर टिकी! टीले के ठीक ऊपर बैठी राजकुमारी पर। कामदेव ने मुस्कराकर बाण–संधान किया और राजनन्दिनी चिल्लाई ''नहीं–नहीं, अब हो चुका। अब नृत्य समाप्त हुआ।''

वृक्षों की डालियों पर स्वर्गलोक की देवीयों की दन्त–पंक्तियों के कपाट खुल गये। बडे जोर की खिलखिलाहट मची। कभी कोई बोलती, कभी कोई:–''कामदेव किसी को छोडते थोडे ही हैं!''

''वर्षा की तेज बाढ़ में मिट्‌टी का मकान नहीं ठहरता।''

''कामदेव को हम सबसे सन्तोष न हो, तो बेचारे क्या करें ?''

''मैं बताऊँ'', एक सखी ने कहा, ''राजकुमारी पर तीर चलावें।''

और कामदेव के धनुष की प्रत्यंचा खिंच गई। राजकुमारी ने कहा''अरी'', तुम सब वाचाल हो। कामदेव कोई तुम्हारे जैसे पागल थोड़े ही है।''

किन्तु कामदेव काहे को सुनने लगे। वे पागल ही नहीं, पागलों के सरताज जो ठहरे। वह इस लल्लोचप्पी में कहाँ आने वाले थे ? बस, कान तक खींचकर प्रत्यंचा को लुभावने फूलों का एक तीर जो राजकुमारी पर छोड़ा है, तो वह झूम ही तो गई। कामदेव की आज्ञा की उपेक्षा स्वयं वसन्त का अपमान जो है।

एक घड़ी तक राजनन्दिनी के संगीतनाट्य ने पुष्पक वन को गुंजायमान किये रखा। दूर–दूर तक उसके घुँघरूओं की झंकार सुनाई देने लगी। पक्षी अपना कलवर रोक कर इस अद्‌भुत प्रदर्शन का आनन्द लेने–लगे। दौड़ते हुए हिरणों के कान खड़े हो गये। लम्बी कनातों के बाहर खड़े अंग–रक्षक प्रहरी झूम उठे।

कामदेव को रिझाने के लिए राजनन्दिनी अपनी सम्पूर्ण कक्षा को अंग–प्रत्यंगों में भरे निवेदिता बनी झूम रही थी। उसके पगों की लम्बी अंगुलियाँ पृथ्वी को समताल के साथ चूम–चूम रही थी। उसकी बाहें हवा में तैर रही थीं और उसके नेत्रपट रह–रह कर उठ–बैठ रहे थे जिनके भीतर स्थित चंचल पुतलियाँ अपने प्रणयी को जगह–जगह ढ़ूँढ़ने के उपकम में लगी हुई थी। एक मात्र संगीत ही उनका साथी था, कला ही उनकी संगिनी थी।

उसकी अंगड़ाई सखियों तक के रोंगटे खड़ी कर रही थी। कुछ सखियों के हाथ वाद्यों पर मानो अपने–आप नाच रहे थे और वे तन्मय हुई इस अलौकिक निवेदन को ग्रहण कर रही थीं, कला का अभूतपूर्व रस ले रही थी।

किसके प्रति था वह आत्मनिवेदन ? वेशधारी कामदेव तो मानो राजनन्दिनी के सम्मुख ओझल हो चुके थे। उसका समस्त ध्यान, समस्त कौशल केवल एक ही व्यक्ति की मनोहारिणी मूर्ति में समाविष्ट हो गया था।

वह व्यक्ति कहाँ का राजा था, कहीं का भूतपूर्व राजकुमार था और उसने किसी के प्राण बचाकर स्वयं ही जैसे हरण कर लिए थे, वह व्यक्ति था बाहुबली।

विभिन्न आकृतियों से राजनन्दिनी कामदेव के अवतार बाहुबली को प्रणाम कर रही थी। उस कामदेव ने चुपके–चुपके उसके समस्त अंगों में आग भर दी थी। वह चेतना आज अवसर पाकर थिरक रही थी, नाच रही थी, झूम रही थी। राजनन्दिनी ने उस आग से पुष्पक वन के कोने–कोने को जलाने का षड्यंत्र रचा था।

राजनन्दिनी विकरल होकर नाच रही थी। सखियों ने गीतों की पंक्तियों से उस नृत्य का श्रृगार कर दिया था।

मन की तीव्र भावना यदि कला में प्रस्फुटित हो सकती है, तो राजनन्दिनी का कला प्रदर्शन उस एकाग्र भावना से ओत–प्रोत था, जो बाहुबली की स्मृति को लेकर नित्य उसको एकान्त में टीस दिया करता था। बाहुबली ने जाने या अनजाने उसकी भेंट को ठुकरा दिया था। यह प्रवंचिता नायिका थी। उसके इहलौकिक भगवान ने उसकी उपेक्षा की थी। उसे जो दुःख, व्याकुलता, वेदना की सृष्टि हुई थी, वह आज अवसर पाकर उसके उस अनुपम प्रदर्शन में केन्द्रीभूत हो उठी थी। बाहुबली के वैजयन्ती से चले जाने पर वह कितना रोई थी, कितना प्रगाढ़ अन्धकार उसके मानस में छा गया था, सब आज रिस–रिसकर उसके संगीत–नृत्य में बह रहा था। वह प्रवाह को केवल मुखरा समझती थी, जिसके नायक की स्नेह–परीक्षा लेने के उस अपूर्व ढ़ग का आविष्कार किया था। राजनन्दिनी के प्रदर्शन को वह देख रही थी, समझ रही थी और उसका समस्त मुखर भाव स्वयं उसके हृदय में बैठकर उसकी हँसी उड़ा रहा था।

किन्तु बाहुबली के उस कृत्य का दूसरा पहलू जिसको वे नारियाँ नहीं समझ सकी थीं, वह कदाचित वास्तविक प्रेम प्रर्दशन से भी घना और तीव्र था। नहीं था, तो कैसे; उस दिन से आज तक बाहुबली के अशान्त हृदय को चैन नसीब नहीं हुआ था ? क्यों वह अपने ही तेज से, अपने ही स्नेह से, अपनी ही भावनाओं से भीतर–ही–भीतर फुँके जा रहे थे। उन्होंने जो चित्र दर्पण में देखा था, वह आज तक ज्यों–का त्यों उनकी चेतना पर अंकित था। संशय था तो वही कि इस चित्र की पृष्ठभूमि में जो कुछ समझने योग्य था, वह भी वास्तविक था या नहीं। फिर उस मुद्रिका के पीछे की भावना अपने मित्र की

स्नेहगरिमा के कारण वह पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ रहे थे। सब स्नेह व्यापार एक अकथनीय रहस्य में छिपा हुआ चला जा रहा था। मित्र के प्रति अविश्वास, अशोभनीय प्रलोभन की सम्भावना से घबराकर वह भाग खड़े हुए थे, बिना कुछ निश्चित किये बिना भविष्य की वेदना और सत्त पश्चात्ताप का विचार किए और वैजयन्ती की निकटता अनुभव करने के लिए उनका अचेतन मन उन्हें पुष्पक वन में खींच लाया था।

एक संशय और चिन्ताहीन राजा की तरह वज्रबाहु भविष्य का प्रबन्ध करके उस घटना की स्मृति को भुला चुके थे। पुष्पक वन में लगे अपने विस्तीर्ण तम्बुओं से निकलकर उन्होंने बाहुबली का मनभाता स्वागत किया। दोनों एक–दूसरे के गले से लिपट गये। आज वज्रबाहु किसी अशक्यपर आक्रमणकारी नहीं था और बाहुबली उसकी सहायता करने के लिए अयोध्या की सबल सेनाओं के साथ नहीं आए थे। पुष्पक वन का सरल वातावरण था, उन्मुक्त मैत्री का विशाल और दृढ़ क्षेत्र था, दोनों मित्र थे, जिन्होंने एक–दूसरे को अपने–अपने मन की भावनाएँ समर्पित कर दी थीं।

वज्रबाहु ने कहा–''आप न आते, तो यह बसन्त फीका ही बीत जाता।''

''क्यों न आते ?'' बाहुबली ने कहा– ''वचन का बन्धन सब बन्धनों से बड़ा जो है।'' और वह हँस पड़े।

वज्रबाहु के पास ही बाहुबली के डेरे लग गए।

8

अगला दिन बसन्त पंचमी का था। सुन्दर और मधुर वायु चल रही थी। वज्रबाहु बाहुबली के लिए भी अश्व तैयार करके उनके डेरे के सामने आ खड़े हुए। मनोरम वेष–भूषा से सजे हुए बाहुबली अपने डेरे से निकले और दोनों मित्र कुछ ही देर में वनपथ पर अश्वों की पीठों पर चलते दिखाई दे रहे थे। उनके पीछे–पीछे उनके अंगरक्षक थे।

वज्राबाहु वन की मनोहरता और सुन्दरता का वर्णन अपनी भाषा में करते जा रहे थे। बाहुबली का मन तो वैजयन्ती में घूम रहा था और वह ऊपर

से वज्रबाहु की बात सुनने का उपक्रम कर रहे थे।

कहीं देवदार और सागौन के वृक्ष दिखाई दे रहे थे, तो कहीं गुलाब केसर की सुगन्धि मन की अभिभूत किये दे रही थी। कहीं से कोयल की प्यारी और मीठी तान सुनाई दे रही थी, तो कहीं दूर से बाघ की दहाड़ कर्णगोचर हो रही थी।

सहसा सामने की ओर से हाथियों की भयानक चिंघाड़ सुनाई दी। अचानक ही भीषण कोलाहल से जंगल गूँज उठा। अश्व ठिठक गए। बाहुबली के मुँह से निकला "यह क्या ?"

"हाथियों का आपस में युद्ध हो रहा मालूम होता है। आइए, आगे बढ़कर देखा जाए।"

किन्तु उन लोगों को आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिला। वृक्षों की श्रेणी के बीच में से एक मदमत्त–सा जंगली हाथी निकला और इन लोगों की तरफ झपटा। अश्व तितर–बितर हो गए। बाहुबली अपने अश्व को लेकर कतरा गए और बोल उठे, "सुन्दर! हाथी तो अनुपम है। यह पोदनपुर की शोभा बढ़ाएगा।"

अभी किसी ने उनके कहने का अर्थ भी ठीक तौर से हृदयंगम नहीं किया था कि उनका अश्व उछला और उन्होंने अपना घोड़ा मस्त हाथी के पीछे डाल दिया।

अभी वज्रबाहु स्तम्भित हुए इस भयानक कांड की यथार्थता समझने–बूझने में ही लगे थे कि उनके देखते–देखते बाहुबली का अश्व उनकी आँखों से ओझल हो गया। उनके मित्र ने पराक्रम की सीमा पार कर ली थी। पागल–हाथी से अकेले–युद्ध! इससे बढ़कर साहस और क्या हो सकता है ?

बाहुबली तो अब दिखाई ही नहीं दे रहे थे। उनके सभी साथी–संगी इस घोरयुद्ध का परिणाम देखने के लिए और बाहुबली के प्राणों की आशंका से व्याकुल होकर उनकी दिशा में चल खड़े हुए। किन्तु किसी ओर भी बाहुबली का पता नहीं चल रहा था। हताश होकर महाराज वज्रबाहु ने सभी लोगों को चारों दिशाएँ बाँट दीं और अपने–आप भी अकेले ही बाहुबली की खोज करने लगे।

उधर दूसरा ही गुल खिला। राजनन्दिनी का नृत्य चल ही रहा था और उसकी सभी सखी–सहेलियाँ तन्मय होकर उस नृत्य का अवलोकन कर ही रहीं थी कि 'हाथी–हाथी' का शोर सुनाई दिया। इससे पहले कि कोई इस रंग में भंग होने का अर्थ समझे लम्बी–लम्बी कन्नातों को रौंदता हुआ पागल हाथी चोट खाये हुए व्याघ्र की तरह रंग–स्थली की ओर झपटा। उसके पीछे वैजयन्ती के सैनिक अपने भाले लिए हुए आते दिखाई दिए। मुखरा जोर से चिल्लाई ''हाथी!''

पता नहीं किसी ने उसका चिल्लाना सुना या नहीं, किन्तु सबको अपनी–अपनी पड़ गई। नृत्य रूक गया। हाथी बड़े भयानक वेग से इसी ओर भागा चला आ रहा था। भारी खलबली मची थी। जिसे देखो जिधर सींग समाता भाग रहा था। राजनन्दिनी फुर्ती से उसी टिले पर चढ़ गई, जहाँ कुछ देर पहले बैठी वह सखियों का नृत्य–गान सुन रही थी। सर्वत्र एक अकल्पनीय भय का वातावरण छा गया था।

किन्तु विपत्ति के साथ उसका विनाशकारी समय भी आया। बाहुबली का अश्व पागल हाथी के पीछे पड़ा हुआ था। अब वह बहुत ही निकट आ गया था और पलक मारते ही वह एक ही छलाँग में पागल हाथी की गति के सामने आकर जम गया। अश्व की पीठ पर सहसा ही बाहुबली, अपने आराध्य देव को देखते ही राजनन्दिनी भय से चिल्ला उठी। इस समारोह के सभी दर्शकों ने अपनी–अपनी साँस रोक ली। अब क्या होगा ? बाहुबली को तो सभी पहचानते थे। वैजयन्ती के त्राण देखने वालों को कौन नहीं पहचानेगा।

बाहुबली ने अपने अश्व के साज के साथ बँधी अपनी गदा निकाल ली थी और इस समय वह उनके दाएँ हाथ में दृढ़ता से पकड़ी हुई थी। हाथी वेग से उनके निकट आया और बाहुबली ने पैतरा देकर अद्‌भुत रण प्रदर्शित किया। उस भारी गदा को उठाकर उन्होंने घोडे को कुदाया और उन्मत्त हाथी के मस्तक पर जोर से प्रहार किया।

पहले ही प्रहार में भयानक पशु अपनी सारी चौकड़ी भूल गया। उसका यंत्रणाजनक चिंघाड़ दूर–दूर तक वन में सुनाई दिया। अभी वह अपनी खोई चेतना, इस आकस्मिक प्रहार से उत्पन्न अँधेरे को, अपनी भारी गरदन को झटका देकर दूर कर ही रहा था, कि उसके मस्तक पर बाहुबली की गदा का दूसरा प्रहार हुआ और आघात से त्रस्त हाथी वहीं भूमि पर लोट गया। वह

दूसरी बार भीषण वेग से चिंघाड़ा और अन्त में पराजय के चिह्न–स्वरूप अपनी सूँड उठाकर जमीन पर पटक दी।

9

स्वयं कामदेव के समान सुन्दर बाहुबली का शौर्य–प्रदर्शन अतुलनीय और अनुपम था। अपनी सांस रोके उसे राजकुमारी ने उसी प्रकार देखा, जैसे सबने देखा, किन्तु उसके मन में जो अकथनीय प्रशंसा के उद्‌गार निकलने के लिए मचलने लगे, उनको निकलने के लिए राह नहीं मिली। दर्शक–सखियों ने भी उस पराक्रम के दर्शन किये और वे अपनी सराहना उंडेलने के लिए बाहुबली के चारों ओर इकट्‌ठी हो गई।

सैनिकों ने पास आकर यथोचित अभिवादन किया। उन्हें देखकर सभी उनकी वीरता का अनुमान लगाते थे, किन्तु किसे पता था कि बाहुबली साक्षात् इंद्र के वंशज थे। किसी ने उनके हृष्ट–पुष्ट शरीर को सराहा, तो कोई एकटक दृष्टि से उनके रूप–माधुर्य को अपने नेत्रों में उतारने लगी।

राजनन्दिनी अपने आश्रय–स्थान से उतर कर टीले के नीचे आई। तभी मुखरा अपनी जबान नहीं रोक सकी। वह बोल उठी–''लीजिए, कामदेव का नाटक करते–करते यह तो साक्षात् ही भेंट हो गई।''

राजनन्दिनी लज्जा से काँप गई। भेंट पहले भी बाहुबली से हुई थी, किन्तु नारी–सुलभ संकोच और लज्जा को छिपाने के लिए महलों का विस्तृत आडंबर था। इस तरह खुले में, पुष्पक वन के बीच, इस प्रकार यकायक उनका सामने पड़ जाना, जो हृदय में छिपे हुए थे, अकथनीय रूप से नवीन अनुभूति थी।

सैनिक अपना–अपना अभिवादन समर्पित करके बाहर की ओर जाकर कन्नातों के घेरे ठीक करने के लिए उद्यम करने लगे। राजनन्दिनी ने कहा–''आपने हम सबको विपत्ति से उबारा है। इस वन में तो कुछ भी नहीं, जिससे आपका अभिनन्दन किया जा सके।''

'हमने तुम्हें देख लिया, और हमें सब–कुछ मिल गया।' बाहुबली कहना चाहते थे। किन्तु उनकी जबान ने बहुत ही सधी हुई भाषा में कहा–''हमें खेद है कि हमने इधर आकर आप सबको आमोद–प्रमोद में अकारण ही विघ्न डाला। हम इस हाथी के पीछे पड़े हुए थे और इसे पकड़कर पोदनपुर ले जाना चाहते थे।''

राजनन्दिनी ने अनजाने ही बाहुबली की इस शिष्टता के प्रति शिकायत की और उपालभ की दृष्टि से देखा। उधर मुखरा अवसर की अलभ्यता का अनुमान करके एक–एक करके बिना किसी के देखे सखियों को वहाँ से दूर हटा ले गई ताकि विकल विरही अच्छी तरह से एक–दूसरे की खबर ले सकें।

राजनन्दिनी तो किसी ओर की उपस्थिति ही मानो भूल गई थी। बहुत दिनों से जिस देवता के दर्शन नहीं हुए थे, आज वह सामने खड़े थे और वह जी भर कर उन्हें देखना–समझना चाहती थी। आज वह उस लज्जा को तिलांजली दे चुकी थी, जिसने वैजयन्ती के राजमहल में अपने प्रियतम को पाकर भी खो दिया था।

राजनन्दिनी ने कहा– ''आप एकदम पोदनपुर कैसे जा सकेंगे ? आज तक वैजयन्ती का जन–जन अयोध्या के राजकुमार की याद करता है। बिना उन्हें अपने दर्शनों के कृतार्थ किये आपका यों जाना नहीं होगा।''

और बेचारी राजनन्दिनी कैसे कहे कि वह स्वयं आज तक उन्हें प्रयत्न करके भी उन्हें अपने हृदय से नहीं निकाल सकी ? किन्तु शोक! बाहुबली अब भी नहीं समझ सके। केवल उनके मन में एक बार वैजयन्ती का आतिथ्य ग्रहण करने की तीव्र लालसा उत्पन्न की गई। अप्राप्य संयम से उन्होने उसका दमन किया। प्रकट में वह बोले– ''हमें सदा वैजयन्ती का प्रेम और आतिथ्य याद रहेगा, देवी! किन्तु अब हमारे कन्धों पर एक राज्य का भार है। हमें उसका भी ध्यान रखना है।''

किस प्रकार राजनन्दिनी उन्हे अपने अटूट स्नेह का भान कराये ? सोचते–सोचते उनकी आँखों में पानी झलक आया और बाहुबली की दृष्टि उस ओर गई, तो वह ठ्क से रह गये।

आँखों में जल। लेकिन क्यों ?

नारी आँखों का पानी सदा से ही पुरूष की निष्ठुरता की कहानी सुनाता आया है। राजनन्दिनी जो न कह सकी, वह उसकी आँखों ने ही अनजाने में कह दिया और बाहुबली को अनुमान करते देर न लगी। स्पष्टतः राजनन्दिनी उन्हें अपने निकट चाहती है, दूसरे शब्दों में वह उनसे स्नेह का सम्बन्ध स्थापित कर चुकी है। तब, अब तक जो वह समझते आये थे, वह क्या सब धोखा था। क्या राजनन्दिनी बाहुबली को चाहती है ? कितना बड़ा पर्दा उनकी आँखों के सामने से हटा था। लेकिन कब ? जबकि वह स्वयं वज्रबाहु के मेहमान थे।

अपने भीतर के इसी विवाद में बाहुबली चित्रलिखित से खड़े रह गये। किस प्रकार इस संशय को दूर किया जाये, और यह संशय दूर भी हो जाये, यदि यह स्पष्ट भी हो जाये कि राजनन्दिनी उन्हें, केवल उन्हें प्रेम की दृष्टि से देखती है, तो वह नीति और मित्रता का मान रखते हुए कैसे उस महानभावना, राजनन्दिनी की स्नेह–भावना की रक्षा कर सकेंगे, यही प्रश्न सबसे अधिक गुरू बनकर उनके नेत्रों के आगे नाचने लगा।

फिर उन्होंने निश्चय करने के लिए कहा "देवी। तुम्हारी आँखों में जो यह नमी उभर आयी है, हमें उससे कष्ट होता है। इस वन में हम थोड़े दिनों के लिए महाराज वज्रबाहु के मेहमान हैं। हम वैजयन्ती आयें, इससे यदि आपको प्रसन्नता होती है, तो महाराज वज्रबाहु के पास हमारे लिए एक निमंत्रण भेज दीजिए। उनकी अनुमति होते ही हम वैजयन्ती आ जायेंगे।"

"महाराज वज्रबाहु ने हमारे राज्य पर आकमण किया था। हम उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध बनाना नहीं चाहते। हम उनसे कुछ माँगना नहीं चाहते, आपको भी नहीं। हमें अपने स्नेह में विश्वास है। यदि वैजयन्ती आपको अपनी ओर नहीं खींच सकती, तो महाराज वज्रबाहु ही कैसे आपको भेज सकेंगे ?"

राजनन्दिनी ने साहस करके अपने मन का अन्तरतम भावना खोलकर रख दी थी। अब बाहुबली के लिए और कुछ जानना शेष नहीं रह गया था। राजनन्दिनी की समस्त चेष्टाओं में उनके लिए अपूर्व आकर्षण, उनका सम्मान और उनका ही प्रेम प्रतिष्ठित दिखाई दे रहा था। अब तो चिन्ता दूसरी थी। किस प्रकार उस प्रेम से सने आदर–सम्मान को स्वीकार किया जाए ? क्या यह उनके लिए सम्भव हो सकेगा ?

दूसरी ओर बाहुबली को ढूँढ़ते–ढूढ़ँते महाराज वज्रबाहु ने पराजित हाथी की दोनों चिंघाड़े सुनी थी। शब्द से ही अनुमान करके वह उसी ओर चल पड़े थे। यहाँ दूर से ही हाथी को टूटे हुए कन्नातों के सिरों के पार देखते हुए वह अपने अश्व की पीठ पर प्रसन्नता से उछल पड़े। वह हर्ष से बाहुबली की दिखाई देती हुई पीठ ठोकने के लिए उनकी ओर बढ़े।

किन्तु वज्रबाहु ठिठक गये। बाहुबली की आड़ से राजनन्दिनी की सौम्य मूर्ति दिखाई दी। वही राजनन्दिनी, जिसे वह आज तक प्रयत्न करके भी वह भुला नहीं पाये थे, जिसके लिए उनके सन्देश बार–बार आकर वैजयन्ती को झिंझोड़ जाते थे। वही उसकी रात की नींद हराम कर देने वाली स्वपन–सुन्दरी, उनकी रातों की पटरानी, बाहुबली से वार्तालाप करती दिखाई दे रही थी। कैसी हो सकती है यह वार्ता ? क्यों बाहुबली हाथी को पकड़ने के बहाने से उनसे अलग होकर आये थे ? निश्चयतः ही उन्हें राजनन्दिनी का उस स्थान पर होना पहले से ही विदित था तब यह वार्ता प्रेमवार्ता थी।

बाहुबली को इस स्थिति में देखकर वज्रबाहु के हृदय में आग लग गई। काम के साकार रूप बाहुबली को एक पागल हाथी के सम्मुख विजय पाते देखकर कौन सुन्दरी हो सकती है, जो अपने समस्त तन, मन, धन से मोहित नहीं हो पाएगी ? क्या यही वह मित्र है, जिसने बड़प्पन और विश्वास जैसे महान् शब्दों के तर्क से उन्हें वैजयन्ती के विरूद्ध युद्ध करने के लिए रोका था ? क्या यही मित्र है, जिनके उन्हें अपनी निर्लेप भावना का आश्वासन दिया था ? वह वज्रबाहु को धोखा देकर पुष्पक वन के इस कोने में उसकी प्रणयिनी को छीनने आया था। ओह, कितना बड़ा धोखा था, कितना बड़ा प्रपंच था। छिः है ऐसी मित्रता पर।

तेजी से वज्रबाहु का अश्व मुड़ा और टपटप करता हुआ उस भूमि से प्रस्थान कर गया। बाहुबली ने उस टपटप को सुना, सिर उठाकर देखा और अश्वारोही वज्रबाहु की लोप होती हुई मूर्ति को लक्ष्य किया। उनके चेहरे पर सहसा एक कालिमा–सी पुत गई।

बाहुबली ने अधीरता प्रकट करते हुए कहा–"देवी, अब जाने दो। कुछ अशुभ होने को है। हमें एक बार शीघ्र–से–शीघ्र महाराज वज्रबाहु से मिलना है।"

राजनन्दिनी भी अधीर हो उठी। ''क्या अब दर्शन नहीं होंगे ?'' उसने अत्यन्त लज्जा से अन्तिम साहस करके पूछा– उसके स्वर में निविड़ निराशा का भाव प्रस्फुटित हो रहा था।

चलने का उपकम करते हुए बाहुबली ने केवल इतना कहा–''इस अनन्त संसार में कौन जाने कब मिलना होगा, देवी! कल भी हो सकता है, और....और कभी भी नहीं.....मैं सेवको को भेज दूँगा, वे इस हाथी को यहाँ से ले जाएँगे।'' और वह अश्व पर सवार होकर जिधर से आये थे, उसी ओर वेग से पलायन कर गये।

भीगे नेत्रों से राजनन्दिनी उनके अन्तिम वचनों का अर्थ लगाती हुई उन्हें जब तक देखती रही, जब तक कि आँखों से ओझल न हो गये। तभी मुखरा ने आकर कहा–''क्या चलने का प्रबन्ध किया जाये, राजकुमारी ?''

चौक कर राजकुमारी ने कहा–''हाँ !''

बाहुबली को थोड़ी ही दूर पर अपने अंगरक्षक मिले। उन्हें हाथी को बाँध कर डेरे पर ले आने की आज्ञा देकर, वह पुष्पक वन के विस्तीर्ण पथ पर दौड़ गये।

थोड़ी देर बाद रथों की एक लम्बी पंक्ति वैजयन्ती के मार्ग पर जाती दिखाई दे रही थी। यह पंक्ति वैजयन्ती की राजनन्दिनी व उसकी सखियों की थी।

राह में मुखराने सब सखियों के कानों–ही–कानों उस दिन की अपनी वाचालता की योजना फूँक दी। जो भी सुनती राजकुमारी के मुख की ओर एक बार देखती और दृष्टि मिलते ही धीरे से मुस्करा पड़ती। इस मौन से घबरा कर राजनन्दिनी उत्सव में कामदेव की भूमिका लेने वाली सखी की ओर लक्ष्य करके कहा–''गुणमाला, आज उत्सव में तुमने तो कला की सीमा पार कर दी। तुमने कामदेव का रूप खूब बनाया।

''मैंने इसमें क्या किया ?'' गुणमाला ने कहा– इतने सारे तीरों में से बस, एक ही तीर तो निशाने पर बैठा। वह भी जो राजकुमारी पर छोड़ा गया था। यहाँ तक कि कामदेव ने सचमुच ही प्रकट होकर राजकुमारी को मोह लिया।

यह सुनते ही सभी सखियाँ खिलखिला उठीं। तभी उनमें से एक, सबको हटा–हटाकर कुछ खोजने लगी। राजकुमारी, जो गुणमाला की बात से लज्जित हो गई थी, पूछने लगी–''क्यों, क्या खोज रही हो ?''

''क्या बताऊँ, राजकुमारी! रथों को वापस लौटा ले चलिये।'' खोजने वाली सखी ने कहा–

''क्यों ?'' राजकुमारी ने उत्सकता से पूछा–''क्या वहाँ कुछ रह गया है ?''

''मेरा मन पुष्पक वन में ही रह गया है। शायद किसी छलिया ने चुरा लिया है, राजकुमारी!''

इस पर जोंरो की खिलखिलाहट मची। किन्तु राजनन्दिनी का मन अवसन्न हो गया। सच ही तो उसका मन पुष्पक वन में ही रह गया था। छलिया ने चुरा लिया था उसे। निष्ठुर छलिया।

10

वापस लौटते हुए बाहुबली ने एक बार पीछे लौटकर अपने संपूर्ण प्रणय–इतिहास पर दृष्टिपात किया। यह सारा ही इतिहास किस प्रकार अपारदर्शी धुएँ से व्याकुल थे। और दोनों में से किसी को यह भी पता नहीं था कि दूसरा पक्ष भी उसके लिए बेकल है या नहीं। कितनी भारी विडम्बना थी यह!

फिर भी ज्यों–ज्यों बाहुबली डेरों के निकट आते जोते थे, एक गम्भीर सत्य उनके सम्मुख स्पष्ट होता चला जा रहा था कि उन्होंने अपने श्रेष्ठ मित्र को दिया हुआ आश्वासन तोड़ा है। उन्होंने स्वयं अपनी अन्तरात्मा की आवाजों को, उसी भाँति तोड़–मरोड़ कर सुना है, जिस प्रकार कोई कामी पुरूष वस्तुओं का रूप अपनी विकृत इच्छाओं के अनुसार देखने लगता है। इस समय वहीं आवाजें मानो एक बार फिर एकत्र होकर उनका कटु उपहास करने लगी।

अपने मित्र का अपूर्व स्वागत करने के लिए वज्रबाहु तैयार बैठे थे। रोष

के कारण उनका सरल सौम्य मुख विकृत हो गया था। कितनी ही देर तक बाहुबली की बेचैनी से प्रतीक्षा करके वह उठकर डेरे के भीतर ही चक्कर काटने लगे। दोनों हाथ कियाहीन पीठ पीछे बँध गये थे।

जब उन्होंने व्याग्रता से अपना सिर उठाया और यकायक ही बाहुबली द्वार पर खड़े दिखाई दिये तुरन्त साधे हुए बाण की तरह से वज्रबाहु ने व्यंग्य फेंका–

"हम अपने मित्र को उसकी प्रणय–यात्रा से लौटने पर बधाई देते हैं।"

आहत सूरमा की भाँति बाहुबली ने कहा–"हम अपने को मित्र के व्यंग का अधिकारी समझते है। हम इस बधाई को स्वीकार करते हैं।

वज्रबाहु जल उठे। उन्होने बाहुबली के करूणार्द्र मुख की ओर तिरस्कार से देखा–"धन्य है आपको! अपने विश्वास की कीमत तो समझो। हम तो समझे थे सब किसी की रूपराशि की भेट हो चुका है। पहले ही हमसे न कहा कि अपने हृदय को पहले बाँध देते। फिर कोई रास्ता रोकने वाला न रहता फिर महाराज बाहुबली को किसी के व्यंग्य–वाणी का अधिकारी न बनना पड़ता।"

बाहुबली ने शान्ति से कहा– "महाराज वज्रबाहु! आप इस समय ईर्ष्या के वशीभूत हो रहे हैं। आप जो कहना चाहते हैं उसे स्वयं नहीं तौल पाते। खेल–खेल में अधीर होकर आप हमसे लड़ना चाहते हैं। क्या केवल एक स्त्री के कारण ?"

"आप बड़ी बात को छोटी दिखाकर उसके आरोप से बचना चाहते हैं ?" वज्रबाहु ने सरोष कहा–

"नहीं, हम बड़ी वस्तु को बड़ी ही समझते हैं। हम मित्रता को बड़ी समझते हैं। आपने अपने हृदय को बाँधने की बात कही थी। ठीक है, यही किसी के हृदय को बाँधने का प्रश्न आता ही है, तो हम आपका हृदय बाँध चुके हैं। आपको भ्रम है कि हमने राजनन्दिनी की ओर अपने–आप कदम बढ़ाया है। हमें राजनन्दिनी से प्रेम है, किन्तु हमें उससे ज्यादा अपनी मर्यादा, अपने वचन और मित्रता से प्रेम है। हम उसे यही समझाना चाह रहे थे कि आप बीच में आ

गये।''

वज्रबाहु के होंठ वक्र हो गये–''कैसे आपने अपने हृदय को बाँधा है जरा हम भी तो सुनें ?''

बाहुबली को अपने सबसे प्रिय मित्र की मनोवृत्ति की दीनता पर दया आई। उन्होंने शान्त वाणी में ही उत्तर दिया–''हम राजनन्दिनी से काई सम्बन्ध नहीं रखेंगे।''

''जी हाँ!'' वज्रबाहु फिर व्यंग्य पर उतर आए–''और फिर स्वयंवर तो होगा ही। उस स्वयंवर के ढ़ोंग में देश–विदेश के राजा लोग केवल इस बात के गवाह बनकर आएँगे कि राजनन्दिनी नें सबके सामने महाराजा–बाहुबली को अपना पति चुनकर उसके गलें में जयमाला डाल दी है। उनमें से किसी को क्या पता होगा कि पर्दे के पीछे क्या नाटक खेला जा चुका है ? आप वह खिलाड़ी है जो रस्से की रस्सकशी से पहले ही उठाकर भाग जाते हैं।''

दृढ़ता के साथ किन्तु अत्यन्त शोक के स्वर में बाहुबली ने अपनी आँखों की पलकों को भींचकर कहा–''महाराज वज्रबाहु! यदि आपको सन्तोष नहीं होता, तो हम आपको वचन देते हैं कि हम राजनन्दिनी के स्वयंवर में नहीं आएँगे।''

वज्रबाहु विमूढ़ की तरह बाहुबली के मुख की ओर देखते रह गये। बाहुबली उस हारे हुए खिलाड़ी की तरह थे, जो अपना सब कुछ खो देता है, किन्तु खेल नहीं खोता। बाहुबली ने इस खेल के ऊपर क्या गँवा दिया था, यह उस एक क्षण में वज्रबाहु नहीं समझ सके।

इस वचन की कठोरता को हृदयंगम करते हुए बाहुबली ने अन्त में कहा, ''लेकिन प्रेम के खेल में जो व्यक्ति एक बार अपने हृदय का सन्तोष खो देता है और उसे स्वयं अपने प्रेम पर विश्वास नहीं रहता, उसे कभी सन्तोष नहीं मिलता। हमें आप पर तरस आता है। हमें दुःख है कि जिस दिन आपको यह मालूम होगा कि जिसे आप मात्र अपनी प्रणयिणी समझते है उसका ध्यान भी आप की ओर नहीं है, उस दिन आपके इसी हृदय की क्या दशा होगी, जिसे अभी–अभी आप कोध में आकर बाँधने की बात कह रहे थे। अच्छी बात है, आप सुखी हों, हम यही चाहते हैं। हम फिर भी आपके वही मित्र रहेंगे....''

शायद बाहुबली कुछ ओर भी कहते, किन्तु उनके मन में भरे उद्‌गार गले का रास्ता रोककर खड़े हो गये और वह वज्रबाहु को अवाक् खड़ा छोड़कर उनके डेरे से चले गये।

अपने डेरे में आकर बाहुबली ने उस सब पर फिर एक बार दृष्टिपात किया, जो वह वज्रबाहु के सम्मुख शान्त उत्तेजना में कह आए थे। धीरता के साथ बैठकर उसके अर्थ को समझा और भविष्य में उसके द्वारा होने वाले परिणाम पर एक बार विचार किया।

उन्होने अपने सुदीर्घ जीवन में केवल एक बार किसी वस्तु को अपने समस्त हृदय से चाहा था; किन्तु जब उसकी ओर हाथ बढ़ाने का अवसर आया, तो वह काँटों में उलझ कर रह गये। कितना उछाह था राजनन्दिनी को जब उसके उन्हें दोबारा वैजयन्ती में आने का निमंत्रण दिया था! कितनी निराशा थी उसके कोमल हृदय में, जब उन्होंने उसके प्रश्न के उत्तर में कहा था कि इस अनन्त संसार में कौन जाने कब मिलना होगा! कल भी हो सकता है और कभी भी नहीं। भविष्य कितना स्पष्ट और सत्य होकर उस समय उनकी जबान से बोल उठा था।

और इस सब अत्याचार से किसी के क्या हाथ आएगा ? क्या महाराजावज्रबाहु राजनन्दिनी को अपना सकेंगे ? भविष्य ही बता सकता है, किन्तु भविष्य बहुत धूमिल लगता है।

तनिक स्थिरता प्राप्त करके दृढ़मना बाहुबली डेरे से निकल कर बाहर आए। चारों ओर डेरे उखड़ने लगे थे और एक सेवक उन्हीं की ओर आ रहा था। उसने निकट आकर कहा–"महाराज वज्रबाहु प्रस्थान करना चाहते हैं। मुझे पूछने की आज्ञा हुई है कि सम्मानित अतिथि की क्या इच्छा है।"

बाहुबली ने बलात् अपने मुख पर मुस्कराहट लाकर कहा "प्रबन्ध किया जाए, हम राजधानी पोदनपुर के लिए प्रस्थान करेंगे।"

सेवक ने शीश झुकाया और वापस चला गया।

11

वैजयन्ती सुन्दरी राजकुमारी राजनन्दिनी के स्वयंवर का बहुप्रतीक्षित दिन भी आखिर आ ही पहुँचा। देश–विदेश के सुन्दर राजकुमारों, चारों ओर के प्रबल राज्यों के, मंडलेश्वर राजे–महाराजाओं के, आगमन से वैजयन्ती का राजपथ अपूर्व चहल–पहल से भर उठा। राजमहल के सामने के विस्तीर्ण उद्यान में स्वयंवर मंडप का आयोजन किया गया था। सारा राजमहल, राजपथ तथा मंडप के लाल–पीले आवरण फूलों से लदे थे। वैजयन्ती के स्तम्भपाषाणों के भी मानो आज भाग्य जाग गए थे।

वैजयन्ती ने स्वयं मानो रंगबिरंगें पुष्पों का परिधान पहन कर आज सजीली दुल्हन का रूप धरा था।

मंडप के बीचों–बीच वरमाला रखी थी। उसका स्वर्णपात्र प्रकाश की किरणों से झिलमिला रहा था। उसके फूल गुलाब, केसर और गेंदे के थे मानो स्वयं ऋतुराज वसन्त ने अवतार लिया था। वे फूल स्वयं ही मानो राजकुमारी के मन की भावना को समझते थे। इसलिए उनके कलेवर प्रणयिनी के नेत्रों की भाँति प्रसन्नता से खिले हुए थे।

इसी अवसर पर दूर कहीं से एक अश्वारोही वैजयन्ती की ओर अपना अश्व दौड़ाता हुआ आ रहा था।

इधर स्वयंवर आरम्भ हुआ। राजपुरोहित ने राजकुमारी के हाथों में वरमाला थमा कर उन्हें पिता, धर्म और समाज की ओर से मनोनुकूल वर चुनने की स्वतन्त्रता देने की घोषणा की।

कंपित करों से वरमाला थामकर राजकुमारी अतिथियों की उस गोलाकार पंक्ति को पार करने लगी, जो उससे विवाह करने की इच्छा से दूरदूर से अपने को साजसँवार कर आए थे। राजाओं के पीछे लगे चारण और भाट अपने–अपने स्वामियों के गुणों और समृद्धि का बखान करते चलते थे। जब राजकुमारी उनकी ओर बिना ध्यान दिए निकल जाती, तो वे मुँह लटका लेते और उनके स्वामी लम्बी–लम्बी निश्वास छोड़ने लगते।

अतिथियों की पंक्ति पूरी हो गई, किन्तु कहीं बाहुबली के दर्शन नहीं हुए। राजकुमारी का चेहरा फक हो गया। मुख पर भावों के आदान–प्रदान का ताँता बँध गया। संसार शून्य नजर आने लगा। राजसभा नेत्रों के सम्मुख नाचने लगी। ध्यान न रहा, कौन कँहा है, कौन कौन है। वरमाला मुट्ठी में जकड़ गयी। अन्धेरे का वातावरण छा गया।

पास ही एक विशाल स्तम्भ का सहारा लेकर राजकुमारी अर्द्धमूर्छित अवस्था में धीरे–धीरे जमीन की ओर गिरने लगी। परिचारिकाएँ सम्भालने के लिए दौड़ी। सारी राजसभा चकित होकर खड़ी हो गई।

बाहुबली ने अपने वचन का पालन किया था।

वज्रबाहु अपने मित्र के त्याग और बलिदान की भावना से स्वयं आश्चर्यचकित रह गए थे। उनका मन बाहुबली को सौ–सौ नमस्कार कर रहा था। सचमुच मित्र हो तो बाहुबली जैसा।

किन्तु वज्रबाहु सर्वथा सांसारिक बुद्धि के व्यक्ति थे। सबसे पहले वही बोलेः "यह सब राजेमहाराजाओं का अपमान है।"

"हाँ, हाँ, अपमान है। ऐसा कभी नहीं हुआ। राजकुमारी को हम में से किसी एक को चुनना ही चाहिए था"– एक अन्य राजा ने तीव्र स्वर में कहा–

"यह राजाओं की सभा है, भांडों का रंगमंच नहीं"– एक ओर से आवाज आई–

राजाओं ने अपने–अपने उद्‌गार प्रकट करने आरम्भ कर दिये थे, जिनका अन्त नहीं था। उधर महल में धीरे–धीरे राजकुमारी की मूर्छा दूर हो रही थी। कुछ देर में वह सचेत हो गई और सबसे पहले उसके मुँह से यही निकलाः "पोदनपुर से कोई नहीं आया ?"

पद्मसेन अपनी पुत्री की मनोव्यथा समझ गये। उन्होंने अत्यन्त शोक के स्वर में कहा– "हमारे ऐसे भाग्य कहाँ हैं, बेटी। इक्ष्वाकु–वंश का गौरव आज चोटी पर है, कौन इतना चढ़कर नीचे उतरता है!"

"नहीं–नहीं, पिताजी," राजकुमारी त्रस्त स्वर में बोली– "उन्हें आना था, उन्हें अवश्य आना था, क्यों रूक गये वह ? कोई अशुभ तो....!" वह क्या कहती जा रही है। यह सोचकर उसने अपने मुँह पर हाथ रख लिया।

एक अश्वरोही मारामार वैजयनती की ओर चला आ रहा था।

किन्तु बाहुबली इस समय पोदनपुर के राजमहल की अटारी पर बिंधे हुए पक्षी की तरह तड़फड़ाते हुए इधर से उधर चक्कर काट रहे थे। उनके हृदय से चैन ने विदा ले ली थी। इधर उनके कारण ही वैजयन्ती–नरेश की आन और मान खतरे में पड़ गये थे।

"वह नहीं आये, बेटी! स्थिति को समझो, उठो, अपना कर्त्तव्य पूरा करो। मरूस्थल में दिखाई देते जल की ओर भागने से कोई लाभ नहीं। चाँद के लिए मचलता बचपना है। वैजयन्ती की राजसभा में आज वीरों की पंक्तियाँ खड़ी हैं। किसी एक भाग्यशाली को अपना वर चुनो और वैजयन्ती को इस भार से मुक्त करो।" पुत्री के सम्मुख पद्मसेन ने अनुनय के स्वर में कहा–

"नहीं, पिताजी! क्षत्रिय–कन्या केवल एक बार अपना पति चुनती है, और मैं पोदनपुर–नरेश को अपना वर चुन चुकी हूँ। मैं अपना व्रत प्राण देकर भी भंग नहीं करूँगी।" और स्थिति की गुरूता का मान करके वह रो पड़ी।

राजनन्दिनी के हृदय में इस समय भीषण अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ था। एक ओर कुल की लाज काँटे पर रखी थी, दूसरी ओर स्वयं उसकी लाज, मर्यादा और व्रत की परीक्षा थी। किसको चुनना था, यह निश्चय करने के लिए समय नहीं था, और जो था वह तेजी से बीत रहा था।

"बेटी...!" वैजयन्ती–नरेश के इन दो अक्षरों में उनके पितृ–हृदय की समस्त मनुहार विविध रूप में समा गई थी।

किन्तु राजनन्दिनी को यदि अब तक कोई नहीं समझ सका था, तो अब उसे समझने की सबसे बडी आवश्यकता थी। यह उसकी हठ नहीं थी, उसकी सर्वोच्च निधि, जीवन की मात्र चेतना के समर्पण का प्रश्न था। और एक बार जो उसके मुँह से 'न' निकली तो फिर 'हाँ' न हुई।

किसी प्रकार भी वैजयन्ती–नरेश अपनी पुत्री को स्वयंवर पूर्ण करने के लिए राजी न कर सके। जब वह असफल होकर राजमहल से लौटे, उनके मुख पर मानो किसी के अलक्ष्य हाथों ने कालिमा पोत दी थी। मुँह लटकाकर उन्होंने स्वयंवर सभा में प्रवेश किया।

इस बीच राजा लोग उत्तेजित हो चुके थे। सभा में पहुँचते–पहुँचते वैजयन्ती–नरेश के कानों में ये शब्द पड़े– "यदि राजकुमारी हम में से किसी का वरण नहीं करेगी, तो हम राजकुमारी का हरण करेंगे।"

चुपचाप महाराज पद्मसेन अपने सिंहासन के पास जाकर खड़े हो गये। उन्हें देखकर चलती हुई उत्तेजना उत्सुकता से शांत हो गई।
गंभीर वाणी में वैजयन्ती–नरेश ने कहा– "आदरणीय अतिथियों, हमें अत्यन्त खेद है कि आप सबको हमारे निमंत्रण पर व्यर्थ ही वैजयन्ती आने का कष्ट उठाना पड़ा। राजकुमारी किसी दशा में स्वयंवर पूर्ण करने की स्थिति में नहीं है। स्वयंवर फिर कभी के लिए स्थगित किया जाता है। हरण का विचार करने वाले महामहिम अपना विचार त्याग दें। बहादुरों से अभी पृथ्वी खाली नहीं हुई है– और आन पर मर मिटना हम भी जानते हैं।"

"यह हमारी मानमर्यादा का प्रश्न है"– एक राजा ने आगे बढ़कर कहा–

"हम जानना चाहते हैं कि आपको या राजकुमारी को इतने राजा–महाराजाओं को बुलाकर उनका अपमान करने का अधिकार किसने दिया?" दूसरे ने पूछा।

तीसरा आगे बढ़ा– "हम पूछते हैं कि यह स्वयंवर का नाटक क्यों रचा गया था?"

"वीरो–खींचो तलवार, और बढ़ो अपनी मानमर्यादा की रक्षा के लिए"–किसी ने घोषणा कर दी। राजसभा में देखते–देखते तलवारों की चमचमाहट फैल गई।

उसी समय वह अश्वारोही वैजयन्ती की राजसभा के सम्मुख आकर रूका, जो अब तक अपने अश्व का मुँह वैजयन्ती की ओर किये हुए दौड़ा चला आ रहा था।

द्वारपाल ने आकर सूचना दी–"महाराज की जय, अयोध्यापति भरतेश का राजदूत राजसभा में उपस्थित होने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ा हैं।"

वैजयन्ती–नरेश ने एक क्षण अपने सामने की विचित्र परिस्थिति को देख कर कुछ विचार किया, फिर उन्होंने सिर उठा कर आज्ञा दी।

"दूत को उपस्थित किया जाये।"

सब राजा जहाँ–के–तहाँ खड़े रह गये। क्यों आया है विश्वविजेता भरत का दूत ? सबकी दृष्टि राजद्वार पर लग गई। कुछ चमचमाती तलवारें नीची हो गई।

भरत के राजदूत ने प्रतिष्ठा के साथ वैजयन्ती की उस विचित्र राजसभा में प्रवेश किया और उपस्थित वातावरण का निरीक्षण करके वह एक क्षण के लिए ठिठका। फिर उपेक्षा और विस्मय से कंधे मटका कर उसने वैजयन्ती–नरेश के सामने नमन किया।

"वैजयन्ती के सम्मान की जय!" युद्ध के लिए उद्यत सब राजाओं पर दृष्टिपात करते हुए भरत के राजदूत ने निवेदन किया– "महामहिम, मंडलेश्वर, परम भट्टारक, महाराजाधिराज श्री भरतेश दिग्विजय करते हुए वैजयन्ती के निकट आये हैं। उन्होंने अवंती चेदि, कौशल, मत्स्य, चन्द्रनगर जैसे देशों के राजाओं को जीता; मगध, कौशांबी, गांधार, जैसे प्रबल भूभागों के अधिपतियों ने महाबली श्री भरतेश का प्रभुत्व अंगीकार किया। परम भट्टारक का संदेश है कि वैजयन्ती भी उन्हें विजयी माने और अयोध्या की ओर से मित्रता का बढ़ाया हुआ हाथ थाम कर सदा के लिए राज्य की सुरक्षा की ओर से चिन्तामुक्त हो जाए।"

प्रसन्नता से फूलते हूए वैजयन्ती–नरेश ने कहा– "आज ही नहीं, सदा से ही इक्ष्वाकु–वंश के द्वारा वैजयन्ती की रक्षा होती आई है। हम भरतेश के प्रस्ताव का सहर्ष अभिनन्दन करते हैं और विश्वास दिलाते हैं कि वैजयन्ती सदा अयोध्या की अनुगामिनी रहेगी।"

अब तक उत्तेजित राजा लोग कानाफूसी में व्यस्त थे। वैजयन्ती–नरेश की बात समाप्त होते ही वज्रबाहु ने गंभीर घोष किया– "अनुगामिनी तो जब

रहेगी तब रहेगी। उससे पहले ही हम वैजयन्ती की ईंट से ईंट बजा देंगे।"

भरत के राजदूत ने वज्रबाहु के सम्मुख तन कर कहा, "मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि अगर किसी ने भी ऐसा दुस्साहस किया, तो वह भूविजेता के कोप का पात्र होगा।"

वज्रबाहु क्रोध से तमतमाते हुए बोले– "इन गीदड़ भभकियों में कुछ नहीं रखा है। बहादुरो! आगे बढ़ो, और अपने अपमान का बदला चुका लो!"

वैजयन्ती–नरेश महाराज पद्मसेन के मुँह पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच गई।

किन्तु राजदूत की चेतावनी के फलस्रूप कितने ही राजाओं ने अपनी–अपनी गरदनें नीचे झुका लीं और तलवारें म्यानों में कर लीं।

वज्रबाहु ने यह देखकर उच्च स्वर से कहा– "वीरो, भरत कोई देव या दानव नहीं है कि हम सबको एक साथ ही खा जायगा। क्या आप लोग युद्ध करना नहीं जानते ? क्या आप लोगों ने क्षत्राणी का दूध नहीं पिया ? साथियों, सब मिलकर भरत का सामना करो और उसे दिग्विजय का पाठ पढ़ा दो।"

एक अन्य राजा ने कहा– "हाँ–हाँ, पहले ही बहुत अपमान हो चुका है। अब और अपमान सहकर राजपद को कलंकित न करो।"

किन्तु राजदूत की ललकार से स्थिति विषम हो गई थी। कुछ राजा तो नितांत चुप्पी ही साधे हुए थे। कुछ अवश्य वज्रबाहु के साथ थे। किन्तु उन्हीं के भरोसे पर इतना प्रबल विरोध होने की संभावना को देखते हुए वैजयन्ती की ईंट से ईंट बजाना हँसी–खेल नहीं था। वज्रबाहु अपनी विवशता से तड़प कर बोलेः

"ओह, हमें मालूम न था यहाँ कुछ सियार भी सिंह की खाल ओढ़ कर आये है।"

वज्रबाहु के शब्द अपमानजनक थे। एक मंडलेश्वर राजा जिन्होंने भरत के दूत के कहने पर अपनी तलवार म्यान में कर ली थी, महाराज वज्रबाहु के

शब्द सुनकर आपे से बाहर हो गये। उन्होंने आगे बढ़कर अपनी तलवार फिर म्यान से बाहर की। "महाराज वज्रबाहु तलवार निकालो। कौन सिंह है, कौन सियार है ? यह अभी मालूम हो जाता है। हमने महाप्रतापी भरत से मित्रता की है, अपनी तलवार नहीं बेच दी है। निकालो तलवार"

वज्रबाहु की आँखों से अंगारे छूट रहे थे। शेर शेर को ललकार रहा था। प्रणय का खेल विस्मरण हो चुका था। राजनन्दिनी को जैसे किसी ने वज्रबाहु के हाथों से छीन लिया था। मन ही मन में अनेकानेक करवटें ले रहा था। उन्होंने अपनी तलवार खींच ली और चुनौती का सामना करने के लिए तैयार हो गये।

ललकारने वाला नरेश आगे बढ़ा। महाराज वज्रबाहु भी आगे बढ़े और निकट ही था कि वैजयन्ती की राजसभा एक अपूर्व कल्पित द्वंद्व युद्ध का अखाड़ा बन जाती कि सबके ऊपर वैजयन्ती के वृद्ध नरेश का आवेश से कंपित स्वर सुनाई दिया।

"सावधान, वीरों! आप दोंनों ही सज्जन हमारे सम्मानित अतिथि हैं, अपने घर में, अपनी राजसभा में हम यह द्वंद्व नहीं होने देंगे। यदि किसी ने भी नीति के नियमों की अवहेलना की तो हम वैजयन्ती के वीरों को बीच में लाकर शान्ति की व्यवस्था करेंगे।"

दोंनो मंड़लेश्वर जहाँ–के–तहाँ रूक गये। भरत के राजदूत ने आग में पानी का काम किया। उसने भी वैजयन्ती के नरेश का समर्थन करते हुए कहा– "महाराजाधिराज भरतेश इस अनीति को सहन नहीं करेंगे।"

भरत के पक्ष के राजा ने अपनी तलवार फिर यथा–स्थान रखते हुए कहा– "यदि महाराजा वज्रबाहु को अपनी वीरता का अभिमान है तो समरभूमि में वह भी परख ली जाएगी।"

"हाँ हाँ, "क्रोध में उफनते हुए महाराज वज्राहु ने उत्तर में कहा–

"हम आपकी और भरत दोनों की वीरता रतनपुर में देख लेंगे।"

भरतपुर का दूत हंसा। "अच्छा, तो अगली भेंट रतनपुर में ही होगी।" उसने कहा– और वापस जाने के लिए वैजयन्ती–नरेश को फिर यथानीति नमस्कार किया।

भरत के राजदूत के जाते ही स्वयंवर विसर्जित कर दिया गया। सब अतिथिगण अपने–अपने ठिकाने पर पहुंचने के लिए शीघ्रता से अपने–अपने वाहनों की ओर चले। जिनका दूर था, वे उस रात्री के लिए वैजयन्ती के मेहमान बने रहे।

12

एक काली घटा अपने विविध रूप दिखा कर, आंधी–पानी और बिजली के रौद्र रूपों का दिग्दर्शन कराके जैसे वैजयन्ती के ऊपर से गुजर गई थी।

इस बीच राजनन्दिनी विचारों के सागर में न जाने कितने गहरे गोते लगा चुकी थी। पहले तो उसके सामने केवल एक ही हृदयविदारक स्थिति आई थी। बाहुबली नहीं आयें थे। इस एक वास्तविकता के आगे और भी भयानक परिस्थितियां थीं। क्या इस दशा में वैजयन्ती का सम्मान ज्यों–का–त्यों अक्षुण्ण रह जाएगा ? इस एक प्रश्न के सम्मुख अन्य प्रश्न गौण हो गये थे। उसने बाहुबली के प्रति अटूट आस्था और स्नेह का संबन्ध प्रदर्शित करके प्रस्तुत समस्या से छुटकारा पा लिया था फिर साँस रोक कर परिणाम देखने के लिए कमर कस कर तैयार हो गई थी। किन्तु राजसभा का बवंडर बिना हानि पहुंचाए जब गुजर गया तो उसने बाहुबली के न आने को उत्तेजित मन से निरखा–परखा।

अविश्वास प्रेम को छिन्न–भिन्न कर देता है। क्यों नहीं आये बाहुबली ? उनके न आने की क्या परिस्थिति हो सकती है ? यदि उन्हें नहीं आना था, तो क्यों नहीं स्वयंवर से पहले उन्होंने उसका समाचार भिजवा दिया था! उस दशा में स्वयंवर को और आगे के लिए टाला जा सकता था। राजनन्दिनी के प्रेम को पहचानते थे या नहीं, संशय अब निर्मूल हो चुका था। स्वयं राजनन्दिनी ने ही अपना मुंह फोड़ कर, नारी सुलभ लज्जा का परित्याग करके अपने मन का छिपा कोना उनके सामने पुष्पक वन में खोल कर रख दिया था।

स्पष्ट था कि बाहुबली इसलिए नहीं आये थे कि वह जानबूझ कर आना नहीं चाहते थे। न केवल आना ही चाहते थे, अपितु उसे विचित्र परिस्थितियों में डाल कर किसी अन्य की बन जाने के लिए अशोभनीय षडयंत्र रचा था। इसीलिए स्वयंवर से पहले कोई सूचना उन्होंने नहीं भिजवाई थी।

बाहुबली के इन सब कृत्यों के पीछे बाध्य कर देने वाली परिस्थितियों की कौन–सी विषमता काम कर रही थी। यह राजनन्दिनी नहीं समझ सकती थी। अतः उसे बाहुबली पर रोष हो आया। न केवल रोष ही आया, बल्कि उसे लगा वह कि ऐसे व्यक्ति से अपने मन का कोई भी सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती।

वह इन्हीं भावनाओं में डूब रही थी कि राज–सभा के प्रबन्ध से छुट्टी पाकर पुत्री को समझने–समझाने के लिए महाराज पद्मसेन राजमहल में आये। उस समय भी राजनन्दिनी अपने भाग्य की क्रूर विडम्बना पर चार–चार आँसू बहा रही थी। वैजयन्ती नरेश का हृदय पुत्री के प्रति स्नेह और करूणा से भर उठा। वह उस एक क्षण में भूल गये कि उसी के कारण अभी कुछ देर पहले उनकी समस्त मानमर्यादा और सारी वैजयन्ती का सुख–चैन संकट में पड़ गया था। राजनन्दिनी के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने आश्वासन के स्वर में कहा– "बेटी, जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ। हम पोदनपुर नरेश महाराज बाहुबली को लग्न भिजवा देते है।"

"नहीं, पिताश्री!" राजनन्दिनी अपने मुँह को हथैलियों से छिपाती हुई बोल उठी। "अब यह नहीं होगा।"

सुनकर वैजयन्ती के अधिपति को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसे क्षणिक दुःख का परिणाम समझा और बोले "दिल छोटा न करो, बेटी! जो होना था, सो हो चुका। संकट टल गया है। कन्या के पिता होने के नाते जो कुछ हमें सुनना था हम सुन चुके हैं।"

" अब आपको कुछ सुनना नहीं पड़ेगा, पिताजी!" राजनन्दिनी ने कहा– "न ही अब पोदनपुर लग्न भेजने की आवश्यकता पड़ेगी।"

वैजयन्ती–नरेश इस अचानक परिवर्तन का कारण नहीं समझें। राजनन्दिनी के उद्‌गारों में एक प्रकार के निश्चय की झलक थी, फिर भी

उन्होने कहा– "नहीं ऐसा न कहो, बेटी! तुम्हीं तो मेरी आँखों की ज्योति हो। तुम्हीं मेरे हृदय का उजाला हो। हम अविलम्ब पोदनपुर को दूत भेज देते है।"

"पिताजी, नहीं!" इस बार तनिक आवेश के स्वर में राजनन्दिनी ने कहा– "अब हमारा पोदनपुर से कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने हमारे प्रेम को ठुकराया है। उन्होंने हमारे विश्वास का हनन किया है। वह हमारे कौन हैं ?" हम उनके उपकृत हैं, हम उनके ऋणी हैं, किन्तु हम भिखारी नहीं है।"

विस्मय प्रदर्शित करते हुए वैजयन्ती–नरेश ने वास्तविकता को ग्रहण करते हुए पूछा– "तो फिर तुमने स्वयंवर में ही क्यों न किसी अन्य राजा को चुन लिया ? यह सब इतना अनर्थ तो न होता।"

दृढ़ स्वर में राजनन्दिनी ने कहा– "पुरूष स्त्री को अपनी वासना का खिलौना समझता है। जब तक जी में आये खेले, जब जी में आये तोड़ दे। मैं इस प्रवंचना में नहीं पड़ूगीं, मैं विवाह नहीं करूगीं। पिताजी! आपने मुझे पुत्र की तरह पाला है। आपकी इस वृद्धावस्था में मैं आपको छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगी।"

वैजयन्ती–नरेश ने एक लम्बी निःश्वास छोड़ते हुए कहा– "कौन बाप अपनी बेटी को सदा–सर्वदा रख सका है ? हम भी नहीं रख सकेंगे, बेटी! हम राजा हैं, किन्तु हम भी समाज से बँधे हुए हैं।"

यह सच है कि कोई आज तक अपनी बेटी को अपने घर नहीं रख सका है। किन्तु यह बेटी क्या साधारण बेटीयों की तरह है ? भरी राजसभा में, इतने राजा–महाराजाओं की उपस्थिति में भी उसने अपने हृदय के नन्हें–से दीपक की ज्योति को अपने कमजोर आंचल की आड़ देकर बचाये रखा। कितनों ने उसे फूँक मारकर बुझाने की चेष्टा की, किन्तु वह नन्हा–सा दीपक जलता रहा, जलता रहा, क्या वह सदा ही नहीं जलता रह सकेगा ?

किन्तु अब जो राजनन्दिनी उसे संजोना चाहा तो वह दीपक ही नहीं मिल रहा था, क्यों बाहुबली ने यह विश्वासघात किया ? यह एक प्रमुख प्रश्न था, जिसका कोई उत्तर बाहुबली की ओर से नंदिनी को नहीं मिल रहा था। जितना ही वह प्रश्न का उत्तर खोजने की चेष्टा करती, वह अपना रूप–बामन के अवतार की तरह बड़ा करता जाता। उसके सामने सारे उत्तर हेच थे, नगण्य

थे। उस सुन्दर और मनोज्ञ बाहुबली की प्रेम प्रतिमा राजनन्दिनी के हृदय में लज्जा और कालिमा से पुति खड़ी थी। इसलिए मांस और मज्जा से घिरे उस भौतिक आकार के अँधेरे में, जिसे लोग दिल कहते हैं, वह ढूँढ़े नहीं मिल रही थी। कितना निविड़ अन्धकार उस जगह छा गया था कि राजनन्दिनी के शरीर का एक–एक अणु उस में भस्मीभूत हुआ जाता था।

राजनन्दिनी के करूण नेत्रों से पिता के हृदय में एक अकथनीय हूक–सी उठी। क्या बेटी होना ही अपराध है ? राजनन्दिनी ने कोई अपराध नहीं किया। कितनी भोली बच्ची है, जो नियति के हाथों बरबाद हुआ चाहती है। यदि जिस किसी के पल्ले बाँधने का ही प्रश्न होता, वैजयन्ती की स्वयंवर सभा में इस प्रकार का अशोभनीय व्यापार चलने की कोई भी आवश्यकता नहीं थी ?

राजनन्दिनी ने अपने पिता की बात का उत्तर नहीं दिया। किन्तु उसने नेत्रों से असंख्य उत्तर दे दियें। उस निराशा ने बता दिया कि यदि बाहुबली उससे विश्वासघात कर सकते हैं, यदि उसके पिता भी आज उसे अपने पास रखने में असमर्थ हैं, तो फिर राजनन्दिनी के लिए वे असंख्य मार्ग खुले हैं, जो रास्ता न रह जाने पर प्रत्येक के लिए खुले रहते हैं।

वैजयन्ती–नरेश ने पुत्री के सम्मुख हार मान ली, उन्होंने उसकी कोमल पीठ थपथपाकर कहा–"अच्छा, बेटी! जो तुम चाहोगी वही होगा।"

राजनन्दिनी पिता के कन्धे से लगकर फूट–फूटकर रो पड़ी।

वैजयन्ती की राजसभा से लौटकर महाराज वज्रबाहु भी रास्ते भर अपना पिछला व्यवहार निरखते चले गए। जितना ही वह उस व्यवहार का बेतुकापन ध्यान में लाते, उनका मन स्वयं ही धिक्कारने लगता। उन्होंने किसी के साथ क्या भलाई की थी ? उनके विपरीत एक बाहुबली का चरित्र था, उन्होंने युद्ध का अवसर मिलने पर, उसमें अवश्यंभावी जीत का अवसर मिलने पर, मित्र से युद्ध करने से इन्कार कर दिया था। उन्होंने अपने अनजाने में ही जिससे प्रेम किया था, उसे अपने मित्र की काम–वासना पर बलिदान कर दिया था। उन्होंने अपने हृदय पर पत्थर रखकर वज्रबाहु को जो वचन दिया था और वज्रबाहु का हाथ सदा नीचा ही रहा था, उस व्यक्ति की तरह, जिसने अपने जीवन में दूसरों से दान लेने के अतिरिक्त और कुछ न किया हो, दान लेकर

उसका दुरूपयोग ही किया हो, उसे अपनी इतर इच्छाओं पर लुटा दिया हो। उन्हें बाहुबली के वे अन्तिम शब्द बार–बार याद आने लगे: "प्रेम के खेल में जो व्यक्ति एक बार अपने हृदय का सन्तोष खो देता है और उसे स्वयं प्रेम पर विश्वास नहीं रहता। उसे कभी सन्तोष नहीं मिलता....जिस दिन आपको यह मालूम होगा कि जिसे आप मात्र अपनी प्रणयिनी समझते हैं, उसका ध्यान भी आपकी ओर नहीं है, उस दिन आपके हृदय की क्या दशा होगी....?" शोक कि अब भूल सुधार का अवसर नहीं रह गया था।

यदि वह बाहुबली से क्षमा माँगें, अपने किये पर पश्चात्ताप करें तो क्या बाहुबली का विशाल हृदय उन्हें क्षमा कर देगा ? रतनपुर की राह पर महाराज वज्रबाहु का मन केवल यही सोचता रहा। क्या ऐसा अवसर कभी आएगा कि वह बाहुबली के सामने अपने पापी किन्तु पश्चात्तापी हृदय को खोलकर रख सकेंगे ?

13

प्रातःकाल का अरूणोदय था। भरत का चतुरंगिनी रतनपुर के उन्नत मस्तक किले को घेरे हुए थी। इस विशाल वाहिनी के बीचों–बीच महाराज भरत हाथी पर चढ़े हुए इस प्रकार किले को निरख रहे थे, जैसे कोई पहलवान कुश्ती से पहले अपने प्रतिद्वंद्वी को देखता है, रतनपुर के मुख्य बन्द द्वार के ऊपर वज्रबाहु की नीली ध्वजा मस्ती से फहरा रही थी। प्राचीरों पर भटों नें मोरचे जमा रखे थे।

सहसा महाराज भरत का उच्चा घोष वायुमंण्डल में गूँज उठाः "महासेनापति! युद्ध का आरम्भ हो।" ये ही वे विद्युतमयी शब्द थे, जिनके सामने बड़े–बड़े महाराज और नरेश काँप उठाते थे।

महाराज भरत की जय के साथ रणसिंधे का गम्भीर नाद चारों ओर व्याप्त हो गया।

अग्निबाणों की एक लम्बी पंक्ति आकाश में ऊँची उठी और किले पर छा गई। उसके पीछे दूसरी, तीसरी बाढ़ें छूटी और ज्वाला की लपलपाती जीभ किले को चाटने लगी।

किले से इसका उत्तर आया तीक्ष्ण और भेदी बाणों के रूप में और भरत की सेना के अपने प्यादे व अश्वारोही भूमिसात् हो गये।

महासेनापति चिल्लाए: "अपने धनुषों की छाया में आगे बढ़ों।"

धनुर्धरों ने एक–के–बाद एक लगातार अग्नि से दग्ध बाणों की बाढ़–पर–बाढ़ दागनी आरम्भ की और भरत के प्यादों ने उन बाढ़ों की आड़ लेकर चपलगति से आगे बढ़ना शुरू किया। कितने ही शत्रुओं के तीर खाकर हताहत होकर जहाँ–के–तहाँ गिर पड़े। शेष अपनी जान की बाजी लगाकर पत्थरों में लुकते–छिपते किले की पहाड़ी पर खाई के किनारों तक जा पहुँचे।

किले में जगह–जगह आग का दृश्य दिखाई दे रहा था। पानी से भरे बरतन फुरती से उस आग पर ड़ाले जा रहे थे। कहीं आग बुझ जाती थी, तो कहीं प्रतिरोध पाकर और तेजी से भभक उठती थी। घायलों की चीखपुकार और तीरों की सनसनाहट के अतिरिक्त और कुछ सुनाई देना असम्भव था। महाराज वज्रबाहु एक अश्व पर चढ़े इधर–उधर व्यवस्था करते हुए और योजना कार्यान्वित करते घूमते–फिरते, भागते–दौड़ते दिखाई पड़ रहे थे।

उन्होने भरत की शक्ति का जो अनुमान लगाया था वह उससे कई गुना अधिक था। उन्हें लाभ यही था कि उनके पास चारों ओर से पत्थरों की चढ़ाई से सुरक्षित किले का परकोटा था और उनके धनुर्धरों को आड़ देने के लिए विस्तृत चहारदीवारी थी, जिसमें छोटे–छोटे मोखले केवल तीरों की वर्षा करने के लिए खुले हुए थे। एक ओर बड़े कड़ाहों में आक्रमणकारियों को भून डालने के लिए तेल उबल रहा था।

भरत की ओर से सीढ़ियाँ लिए अगणित संख्या में सैनिकों ने पूर्वसैनिकों का अनुसरण किया और किसी प्रकार गिरते–पड़ते वे भी उन तक जा पहुँचे, जो उनसे पहले पत्थरों की आड़ में पहुँच चुके थे। उनके पीछे काठ के हल्के पुल लिए हुए और सैनिक चले, और उनके साथ उनकी रक्षा के लिए धनुर्धर अश्वारोही चले, जिनके कारण ही महाबली की चतुरंगिनी अजेय समझी जाती थी। इन्होंने उन पुलों की आड़ ले ली थी और विरोधी के तीरों की बाढ़ें उन्हें बहुत कम नुकसान पहुँचा पा रहीं थीं। मुख्य समस्या यह थी कि खाई पर पुल रखने के बाद वे अश्वारोही बिल्कुल खुल जाते थे और उस समय विरोधी कोशिश करने पर उन में से एक को भी जीवित–वापस अपनी सेना में न पहुँचने देता।

भरत अपना अश्व कुदाकर महासेनापति की बगल में पहुँचे– "सेनापति–हाथियों को आगे बढ़ाने की आज्ञा दो। खाई पर पहुँच करके ये हाथी इन अश्वारोही सैनिकों को आड़ देंगे और साथ ही उन्हें लिए पुल पर आगे बढ़ सकेंगे। किसी प्रकार मुख्य द्वार तक ये पहुँच जाएँ, तो, विजय में देर न लगेगी।"

महासेनापति ने घोष किया और दूसरी ओर से विशालकाय पर्वताकार हाथियों की श्रेणी उमड़ी, जैसे साक्षात् चन्द्रमा की चाँदनी पर हिमालय के शिशु आगे बढ़े चले जा रहे हों। अश्वारोहियों ने तात्पर्य समझ लिया और उन्होंने पुलों कों हाथियों की सूड़ों में पकड़ा दिया। अपने आप वे उनकी आड़ में चलने लगे। अब शत्रु का एक भी तीर उनकों नहीं छू पा रहा था।

भरत की सेना के अश्वारोही, जो अभी बहुत आगे नहीं बढ़े थे, अपनी जगह से ही कमाल कर रहे थे। धनुष आरोहियों के हाथों में थे और वे क्षण में यहाँ तो क्षण में वहाँ। शत्रु का पल्ला तक यदि प्राचीर के किसी छेद से झाँकता, तो सन्न से तीर उसमें जा घुसता।

सेना के पिछले भाग में दो विशाल खभों के सहारे एक दीर्घकाय गुलेलनुमा यंत्र खड़ा था, जिसे लगभग सौ पहलवान चला रहे थे। पचास–पचास मनुष्यों के हाथ लगने लायक दो शहतीर दोनों ओर लगे हुए थे और बीच में लचक का काम देने के लिए लचकदार लकड़ियों को जोड़कर अद्‌भुत कारीगरी से एक ऐसा मजबूत स्प्रिंग बनाया गया था, जो मनों वजन के पत्थरों को उठाकर जोर से हवा में फेंक देता, और पत्थर किले में जाकर बीभत्स रस की सृष्टि करते थे।

तीरों की चोट सहते–सहते पर्वताकार हाथी बिछाये हुए पुलों पर दौड़ते चले गए। अब पुल तो पार हो गया था, किन्तु अनेक हाथी इस बुरी तरह से बिंध गये थे कि उनकी आगे बढ़ने की शक्ति ही लोप हो गई थी। गगनभेदी चिंघाड़े चारों ओर छा गई थीं। केवल पाँच हाथी अब भी बराबर मुख्य द्वार को लक्ष्य करके दोड़ रहे थे यद्यपि उनके चारों ओर भागते हुए रक्षकों की संख्या निरन्तर कम ही होती जाती थी। एक हाथी का तो महावत ही गुम था, किन्तु वह भी अन्य की देखा–देखी दौड़ रहा था।

मुख्य द्वार तक पहुँचते–पहुँचते एक भी रक्षक न रहा। महावत तीर खाकर भू पर लुंठित हो गए थे। हाथी अब भी मानो अपने ध्येय को पहचानते थे और मुख्य द्वार ही उनका चरमलक्ष्य था। उनका मुँह उसी ओर था तो उनकी समस्त शक्ति भी उसी ओर के विशाल फाटकों पर लगी थी। द्वार के मोखलों में से तीरों की एक मर्मान्कर बौछार हुई, और कुछ तीर हाथियों के शरीर में घुस गये। हाथी जोर से चिंघाड़े और उन्होने विशालकाय फाटकों में अपना समस्त अन्तिम बल लगाकर भयानक टक्कर दी। फाटकों से बाहर निकली लम्बी–लम्बी कीलें उनके मस्तकों में घुस गई और साथ ही चूलें अपनी जगह जोर से चरमराकर रह गईं। फाटकों के पीछे लगा तरह–तरह की वस्तुओं का भारी अंबार उन्हें अपनी जगह से हिलने की अनुमति नहीं दे रहा था।

भीतर से फिर मोखलों की राह बल्लभ और तीरों की वेदना से वापस भागकर बचने की इच्छा से हाथी मुड़ चले। फिर उल्टी दिशा में वेग से दौड़ने लगे। प्राचीर पर खड़े महाराज वज्रबाहु धनुषों की टंकार ने उनका पीछा वहाँ भी न छोड़ा और वे जीवित पर्वत के बीच राह में ही धराशायी हो गए।

लेकिन यह क्या! उनके गिरते ही सामने से ढ़ालों की ओट में हाथियों का दूसरा मारू दस्ता आता दिखाई दिया। उस दस्ते में कम–से–कम बीस हाथी थे। इस बार हाथीयों के माथे पर पीछे कपड़ा लगाकर ढ़ालें बाँधी हुई थी। उनका वेग बहुत तीव्र था। तीर आते और ढ़ालों पर टकराकर गिर पड़ते। ध्यान से देखने पर और भी नवीनता, दिल दहला देने वाली नवीनता उनमें दिखाई दी। उनके शरीर विचित्र प्रकार की हल्की लोहे की चादरों से ढकें हुए थे, जो उन्हें लगभग चारों ओर से सुरक्षित किए हुए थीं। तीरों का उन पर कोई असर होता मालूम ही नहीं हो रहा था।

इन नए और ताजादम हाथियों ने मद्यपान किया था। उन्होने जाते ही द्वारपर भीषण टक्कर दी। कीलें टूटकर अलग जा पड़ीं और जंगी किवाड़ों की चूलों से मोटी चूल की तह–की–तह हाथियों के सिरे पर झड़ पड़ी।

उधर सीढ़ियों को लिए हुए सेनाओं का समूह किले की चहार दीवारी के नीचे पँहुच चुका था। बारबार सीढ़ियों की पंक्तियाँ लगाई जातीं, आदमी अस्त्र–शस्त्र लिए ऊपर से शत्रु बल्लमों और तलवारों के वार कर–करके उन्हें नीचे गिरा देते। एक बार जोर का हल्ला बोलकर सहस्त्रों सैनिक जानपर

खेलकर हजारों तरफ से चीटियों की कतार–पर–कतार की तरह प्राचीर पर चढ़ दौड़े। नसैनियाँ उनके भार से टूटने के करीब आ गई। ऊपर से पकता हुआ तेल और आग में तपे हुए भाले व बल्लभ उनके स्वागत के लिए तैयार थे। ज्यों ही यह वीभत्स स्वागत व्यवहार में आया, आहत और जले–फुंके सैनिकों के कानों के परदे फाड़ देने वाले आर्त्तनाद से वायुमंडल हहरा उठा। लेकिन सीढियाँ अगणित थीं। उधर प्राचीरों से निकट ही मुख्यद्वार अपने चूलों से उतर गए थे और एक ही प्रहार की और आवश्यकता रह गई थी। इसलिए महाराज वज्रबाहु की केन्द्रित शक्ति उसी ओर लगी थी। असंख्य सैनिक प्राचीरों के ऊपर पहुँच गए और हाथों–हाथ युद्ध होने लगा। वीरों का पराक्रम तो अब देखा जाना था। अब तक तो प्राण होमने का ही यज्ञ था।

भरत के सामने आज तक इतना दृढ़ किला नहीं आया था और न ही उनके इतने सैनिकों का रणखेत कभी हुआ था। किन्तु विजय के उन्माद में वह उस प्राण हानि को भूलते जा रहे थे।

अधिकांश सेना फाटकों पर जा जुटी थी। केवल जगह न रह जाने के कारण दूर मैदान तक सैनिकों का क्रमबद्ध ठठ लग गया था। मद्य पिए हुए हाथीयों ने एक जी तोड़कर टक्कर और दी, और टूटकर गिरते हुए आसमान की तरह वे फाटक पीछे का बोझ न सँभाल सकने के कारण आगे की ओर गिरे। किन्तु उसके नीचे के सैनिक समय रहते हुए खतरे को पहचान गये और उन्होंने कहीं भी अपने निकलने की जगह न रहने के कारण चतुर नायक की आज्ञा पाते ही अपने ढ़ालें एक साथ ऊपर की ओर उठा दीं। एक जोर के धक्के से सब बैठते से दिखाई दिये। लेकिन फाटक असंख्य हाथों के ऊपर उठे होने के कारण उन पर टँग गए और भरत के वीर सैनिक उन्हें लिए दिये ही आगे की ओर बढ़े।

पीछे से और अश्वारोहियों को लिए महाराज भरत स्वयं अपने सैनिकों की पीठ पर आ पहुँचे। किले के भीतर महाराज वज्रबाहु अपने सैनिकों को बढ़ावा देते हुए चारों ओर अपने घोड़े को कुदा रहे थे। "हिम्त से बढ़ों, वीरो! यदि तुमने भरत को जीत लिया, तो तुम विश्व विजेता कहलाओगे।"

किन्तु विजय श्री तो महाराज वज्रबाहु से कभी की रूठ चुकी थी। उसी समय उन्होंने मुख्य द्वार को भारी आवाज के साथ टूटते हुए देखा और उन्हें ऐसा लगा कि स्वयं उनके किले का फाटक ही उनके विरूद्ध षड्यत्र रचकर

उनकी ओर बढ़ा आ रहा है। वह तुरन्त कतराकर अपने महल की ओर भागे। युद्ध चलता रहे, और उन्हें एक बार अपने प्राण बचाने का अवसर मिल जाये यही बहुत है।

अब युद्ध चरम सीमा पर पहुँच गया था। निर्णायक दस्ती लड़ाई हो रही थी। भरत के सैनिक पूरी गति से मुख्यद्वार की राह द्वारा भी किले के अन्दर प्रवेश कर रहे थे। प्राचीरों का युद्ध समाप्त हो गया था। अब नगर के भागों पर युद्ध लड़ा जा रहा था। एक सौ अंगरक्षकों के साथ भरत राजमहल की ओर बढ़े। भयानक मारकाट मचाते वह महल में घुस पड़े और महाराज वज्रबाहु की खोज करने लगे।

भरत के कुमार विशालकीर्ति ने महल का कोना–कोना छान मारा। किन्तु वहाँ महाराज वज्रबाहु हों, तो मिले भी। दो सौ विश्वासी अनुचरों के साथ वह अपनी युवा कन्या, रानी और जरूरी सामान साथ लेकर गुप्त सुरंग की राह रतनपुर से बाहर निकल गए थे। यही था दंभी और पराजित महाराज वज्रबाहु का शेष वैभव, जो दिग्विजयी भरत के दृढ़ संकल्प के तले आने से बच गया था।

14

रतनपुर पर भरत की पीली ध्वजा फहराने लगी। भाग्य ने स्वयं अपने हाथों से जिसका सर्वस्व छीन लिया हो फिर उसे कौन शरण दे ? अपने गिने–चुने साथियों को लेकर वज्रबाहु जिस राज्य में जाते, उनक मुँह पर राजधानियों के फाटक बन्द कर दिये जाते। महाबली भरत के शत्रु को टिकाना मुसीबत का न्यौता देना था। दिन में तुषार पात करते, रातें सितारों को चमका–चमका कर हँसती, और वज्रबाहु अपने संगी–साथियों के प्राणों को लिए फिर, राह पर ही खड़े नजर आते।

इस संसार में यदि प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का फल मिलता है, तो महाराज वज्रबाहु को भी मिला था। इसमें कोई नवीनता नहीं थी। नवीनता थी, तो यही कि उस फल से उनके मुँह का स्वाद बिगड़ गया था, वह उस रस को ठीक समझ नहीं पा रहे थे। यदि उसे पश्चात्ताप कहा जाये, तो ठीक–ठीक भावना प्रकट नहीं हो सकती। पश्चाताप करने के बाद स्वाद बदलने के लिए

बहुत कुछ बच रहता है। वज्रबाहु के पास कुछ नहीं बचा था। बचा था केवल कष्टों का अम्बार, और अपने पिछले कारनामों पर रह–रहकर झुरना।

इतनी ओर से, और इतने प्रकारों से दुतकार मिलने पर अब वज्रबाहु की एक इच्छा बल पकड़ती जा रही थी। जो आदमी सदा पहाड़ी की चोटी पर रहा हो, वह मैदान में रहकर अपने को सुखी अनुभव नहीं कर सकता। किसी प्रकार यदि वह अपनी रानी और पुत्री को अपने श्वशुर–गृह पहुँचा सकें, और उनकी ओर से निश्चिन्त हो सकें, तो वे अपने साथियों को अपनी ओर से स्वतंत्र कर देंगे और बाद में शिखर पर रहने वाला किसी वास्तविक पर्वत शिखर से कूद कर अपने हीन जीवन का अन्त कर दें।

किन्तु इससे पहले एक कर्तव्य शेष था, एक बार बाहुबली से, अपने निकटतम मित्र से मिलकर वह उनके चरणों में अपने को गिरा देना चाहते थे, रोना चाहते थे और जता देना चाहते थे कि इस दुनिया में केवल भलाई ही एक ऐसी वस्तु है, मात्र जिसको मनुष्य अपनी निज की निधि समझ सकता हैं, और स्वयं उनके उदाहरण को देखकर इस चलती–फिरती दुनिया का एक आदमी भी यदि भलाई की ओर झुक सका, तो उन्हें संतोष होगा। यदि बाहुबली विश्वास कर सकें कि उनके अभिन्नतम मित्र का क्रूर हृदय उनके अन्तिम समय दर्पण की भाँति निष्कलंक था, तो वह अपना अवसान सार्थक समझें।

बाहुबली से एक बार भेंट करके वह बताना चाहते थे कि उनके त्रस्त हृदय की प्रतिमा, वैजयन्ती की राजनन्दिनी सम्पूर्ण रूप से उनकी ही है, तो उन्हें कम से कम यही सन्तोष होगा कि छिन्न–भिन्न श्रृंखला के सिरे उन्होंने मिला दिये हैं। अब उन्हें राजनन्दिनी की ओर से कोई शिकायत नहीं रह गई थी। स्वयं अपने को मृत्यु की भेंट करके मरने वाले का साझीदार बनकर ही कोई उसका रक्षक होने क दावा नहीं कर सकता। बचाने वाला उससे कहीं बड़ा है। इस नाते महागंगा के मेले में राजनन्दिनी को बचाने वाला कुमार–बाहुबली कुमार वज्रबाहु से बड़ा है और वह राजनन्दिनी का कहीं अधिक दावेदार है, यदि इस नाते कोई दावा प्रकट किया जा सकता है, तो।

अब उन्हें यह याद नहीं रहा था कि बाहुबली भरत का भाई है, उन्हें यह भान नहीं रहा था कि बाहुबली उनका अभिन्न–हृदय मित्र है। अब उन्हें केवल एक ही स्थिति का स्मरण था कि बाहुबली एक ऐसी महान् आत्मा है, जो उनकी स्वयं की पहुँच से कहीं ऊँचे हैं, बहुत ऊँचे हैं, और उस तक हाथ पहुँचाने की चेष्टा करना दम्भ करना है। वह ऐसी मूर्ति है, जिसकी पूजा की जा सकती है, उसके समान बनने का अवसर कम से कम इस नश्वर जन्म से लोप हो गया है।

और एक दिन डूबते हुए सूर्य की अन्तिम रश्मियों के साथ वज्रबाहु के इस छोटे से काफिले ने पोदनपुर के मुख्य द्वार पर दस्तक दी।

भीतर से प्रहरी ने मोखले की राह बाहर की ओर झाँका। "कौन लोग हो ? कहाँ से आना हुआ है ? साथ में कौन–कौन आदमी हैं ? उसने सब पूछा।

कठिनाई से वज्रबाहु ने उत्तर दिया– " अरे भाई, हम लोग मुसाफिर हैं। एक रात के लिए यहाँ की धर्मशाला में शरण चाहते हैं। दूर देश से आये हैं। गोविन्दपुर हमारा गाँव है। रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया है। सो थोड़ा बहुत प्रबन्ध करके सुबह वापस चले जाएँगे।"

प्रहरी पीछे हट गया। कुछ देर बाद लोहे का जंगी फाटक खुल गया। दो सौ के करीब आदमियों का यह गिरोह बड़ी दीनता से पोदनपुर के अन्दर घुस गया। इस समय वज्रबाहु के पास रास्ते की धूल और कीचड़ से लिपटे वस्त्रों की ही एक ऐसी पूँजी थी, जिसे वे अपने वैभव के नाम पर दिखा सकते थे। किसे बतायें कि वह तो रतनपुर के महाराज है, वज्रबाहु हैं ? कौन उनपर विश्वास करेगा ? यदि यह बताते, तो कौन उनके लिए पोदनपुर के फाटक खोलता ? यदि बाहुबली उन्हें देखकर घृणा से मुँह भी फेर लेते, तो भी कोई आश्चर्य नहीं था। वह मनुष्यों में श्रेष्ठ सही, किन्तु अन्त में तो मनुष्य ही हैं, और मनुष्य में अपने अतीत को याद रखने की अद्‌भुत स्मरण–शक्ति होती है।

सब लोंगो के अन्दर जाते ही फाटक फिर बन्द हो गया। प्रहरियों मे से एक व्यक्ति प्राचीर से उतरा। "डाकुओ ने लूट लिया है। बड़ा गजब हुआ रे! साथ में स्त्री–बच्चे। अत्याचारियों को तनिक भी दया नहीं आई। हाय रे, जमाना कितना बदल गया है। दुनिया कितनी खराब हो गई है। फिर भी आप लोग चिन्ता न करें। मैं चले चलता हूँ आपके साथ धर्मशाला में। सुबह होते ही महाराज के सामने जाना, उन्हें अपनी विपत सुनाना। अरे, हाँ, वह सबकी सुनते है। फिर गुजर–बसर को देते है। डाकुओं का होना तो वह अपना ही अपराध मानते है। अरे, हमारे राजा देवता हैं, देवता।"

वज्रबाहु इस बात के कायल थे कि बाहुबली देवता हैं। रास्ते भर वह राजपुरूष अपने देवता की तारीफ करता चला गया। धर्मशाला के व्यवस्थापक से मिलकर उसने बड़े उत्साह के साथ उन लोंगो के ठहरने का प्रबन्ध कराया। किस प्रकार डाकुओं ने हमला करके उन निरीह यात्रियों को लूट लिया था, यह

उसने खूब खोद–खोदकर पूछा। जब वह वहाँ से गया, तो वह अपनी खोजबीन से पूर्णतः सन्तुष्ट था।

किन्तु उसके सन्तोष से पोदनपुर की तमाम बस्ती में उन लुटे–पिटे निरीह यात्रियों की कहानी फैलते देर न लगी। लुटा–पिटा आदमी एक नहीं था, दो सौ से ऊपर थे, यही कारण था जो लोंगो की उत्सुकता को बढ़ा रहा था। कैसे हुआ, क्यों हुआ, क्या हुआ, ये समस्त जानने योग्य बातें एक भारी जनसमूह को धर्मशाला के द्वार तक खींच लाई।

एक मूँछधारी ग्रामीण सज्जन औरों से आगे बढ़कर आये। उन्होंने महाराज वज्रबाहु को ही काफिले का सरदार समझकर उनके ऊपर अपने कभी न शान्त होने वाले प्रश्नों की झड़ी लगा दी। अब जो कहानी एक बार मुँह से निकल गई थी उसे वास्तविक बनाने के लिए महाराज वज्रबाहु को पर्याप्त कल्पना से काम लेना पड़ा। उन्होंने बताया कि सामान ऐसे लुटा, वहाँ लुटा, और इसलिए लुटा कि वे लड़ना नहीं जानते थे, सीधे–साधे व्यापारी थे।

उस ग्रामीण ने बड़ी सहानुभूति दिखाई। वह बोला– "हमारा एक मित्तर तुमरे जोट का रहै। मुदा वा की सूरत सकलेह तोहार सूरत–सकल से मिलत–जुलत रहै। वा कैं जुधका कौसल देखौ, तौन दाँत माँही अगुँली दबाय लेओ। का गबरू रहै? का पाठा रहै!"

इस बात का कोई मतलब वज्रबाहु की विपत्ति से नहीं था। किन्तु ग्रामीण की सहानुभूति के शब्दों के साथ बहुत कुछ व्यर्थ की बातें भी गले के नीचे से उतारनी पड़ी। फिर उस ग्रामीण ने कहा, "तुमरी खबर अपना राजा के ठौर पहुँचाई देब। तुम देखो तो कस नीक परबंध होई।"

वज्रबाहु ने ग्रामीण के उत्साह को बीच में ही पकड़ा। वह महाराज बाहुबली के सम्मुख इस प्रकार नहीं पहुँचना चाहते थे। उन्होने कहा– "नहीं, नहीं, हम खुद तुम्हारे राजा से फरियाद कर लेंगे, अरे भाई सच तो यह है कि जिसकी तकदीर बिरानी, उसका कौन अपना होता है। तुम्हारे राजा भले ही देवता हों, परन्तु हमारे साथ उनका क्या संबंध हो सकता है ? वह काहे को अपनी गांठ से हमारा नुकसान भरने लगे ? नुकसान...!" वज्रबाहु ने एक लम्बी साँस खींची।

पर वह ग्रामीण तो मानो राजा की ओर से खिलअत लेकर आया हो, इस प्रकार बोल रहा था। उसने कहा– "तुम नीके फिकर नाहीं करनै। मुदा एक बार राजा के ढ़िंग खबर तो भेजी। फेर देखौ, उलटे तान तोहर मुलाहजा केरि खातिर खुद ही दौड़ा–दौड़ा नाय आवे, तो कहबे को रहि।"

बात को टालने के लिए वज्रबाहु ने कहा– "अच्छा, भाई, अच्छा।"

कुछ देर बाद सब लोग अपनी–अपनी उत्सुकता शांत करके चले गये। अब वज्रबाहु के संगी–साथियों ने छुट्टी पाई और वे लोग अपना मलिन वेश दूर करने के प्रयत्नों में जुट गए।

वज्रबाहु पोदनपुर की प्रजा से अपने यहाँ की प्रजा की तुलना करने लगे। यद्यपि अब राज्य नहीं रहा था, दोबारा मिलने की आशा नहीं रह गई थी, किन्तु फिर भी उनका मन सोचने लगा कि कितनी सुखी और समृद्ध है बाहुबली की प्रजा। प्रजा का एक–एक आदमी अपने राजा के व्यवहार के बारे में इस प्रकार भविष्यवाणी करता है जैसे उनका राजा स्वयं उनके ही परिवार का एक आदमी हो। ऐसी प्रजा को कौन हरा सकता है, कौन आक्रमण करके इस प्रकार के मनुष्यों को बन्धन में रख सकता है ?

इन्हीं विचारों में वज्रबाहु को नींद आ गई और वह अन्य लोंगो को सोने का प्रबन्ध करने के लिए कह कर स्वयं भी एक चारपाई पर पड़े रहे। उनके इस समय का स्वर्ण पलंग था वह खाट, जिनके बान उनके बदन को भालों की तरह बेध रहे थे। फिर भी उन्हें एक ही सुख था। वह समझते थे कि वह जहाँ हैं, वहाँ उनका एक ऐसा मित्र वास करता है, जो देवता है!

सुबह हुई, और इससे पहले कि वज्रबाहु के सभी आदमी जाग सकें, उन्होने धर्मशाला के बाहर भारी शोर–शराबा सुना। क्या बात है, यह जानने के लिए ज्यों ही महाराज वज्रबाहु बाहर की ओर लपके उन्हें कुछ आदमियों ने घेर लिया। सिर उठाकर देखा, तो वे राज्य के सैनिक थे।

बिल्कुल व्यापारी ध्वनी में वज्रबाहु ने कहा, " अरे, भाई, हम गरीब लोंगो को क्यों सताते हो ? हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? हम तो गरीब व्यापारी है। आज यहाँ हैं, तो कल वहाँ।"

एक सिपाही बड़े व्यंग्य से बोला, "हाँ, हाँ, क्या कहना है गरीब आदमियों के! अरे, नामधाम छिपाकर पोदनपुर में आकर ठहरे हो। चोर–डाकुओं की झूठ कहानी गढ़–गढ़कर सुनाते हो। ऐसे राजद्रोहियों को तो राजा पकड़वाकर सूलीपर चढ़वा देता है। चलो तो, जरा राजसभा तक तो पहुँचो, कैसी पोल खुलती है तुम ठगों की!"

महाराज वज्रबाहु को मालूम हो गया, कि उनकी कहानी में कहीं कोई त्रुटि पकड़ ली गयी है, और अब सिवा इसके और काई चारा नहीं हैं, कि महाराज बाहुबली की राजसभा में चोर–उचक्कों की तरह उनकी सुनवाई हो, और दण्ड मिले। सच है, जहाँ भाग्य ले जाकर पटक देता है वह चाहे कीचड़ हो या मलमली तोशक कुछ ठिकाना नहीं है उसका।

थोड़ी ही देर में उनके सभी साथी बाँध लिए गये। रानी और राजपुत्री के लिए पालकियाँ आईं, और वज्रबाहु को यह सन्तोष रहा कि चलो उनके साथ उनकी पत्नी तथा पुत्री को तो व्यर्थ की वेदना का शिकार नहीं होना पड़ा।

दो सौ से ऊपर राजद्रोहियों का समूह पकड़ा गया है इस समाचार को पर लग गये। आसपास का जनसमूह उन्हें देखने के लिए उमड़ पड़ा। तरह–तरह की बातों की मर्मर ध्वनि सुनाई देने लगी। किसी के मुँह से कुछ निकल रहा था, तो किसी के मुँह से कुछ। जिन लोंगो ने विगत रात्री को उन लोंगो को देखा था, वे अब आश्चर्य से मुँह फाड़े उन लोंगो को देख रहे थे: "अरे, दुनिया का हाल तो देखो! कल कैसे भोले बने धर्मशाला में आ टिके थे। चोर कहे, मेरे घर डाकू घुसे हैं।"

15

वज्रबाहु भाग्य का चक्र देख रहे थे। पोदनपुर के प्रति कोई राजद्रोह उन्होंने किया नहीं था। सैनिकों से और भी कुछ पूछना–ताछना बेकार रहा। वास्तव में वे लोग कुछ अधिक जानते भी नहीं थे। फिर भी अनुमान लगाने को बहुत कुछ दिखाई दे रहा और सुना जा चुका था। यदि वे सचमुच राजद्रोही थे, तो अयोध्या के प्रति थे। उन्होंने सोचा। प्रत्येक वह स्वतन्त्रता प्रेमी व्यक्ति राजद्रोही हो जाता है, जो स्वतन्त्रता की लड़ाई में हार जाता है। उन्हें उस राजद्रोह पर गर्व था।

महाराज वज्रबाहु का सीना तना हुआ था, किन्तु गरदन भाग्य को निकट से परखने के लिए छाती की ओर झुकी हुई थी। बाहुबली भरत का भाई था। यदि वह अपने भाई के शत्रु को पकड़कर अयोध्या, पहुँचाने का प्रयत्न करता है, तो कोई उसे दोष नहीं दे सकता। ऐसे अवसर पर क्या मित्रता का विचार किया जा सकता है ? वज्रबाहु यदि इस स्थिति में होते, तो क्या करते ? संभव है यह सोचने की बात होती। किन्तु उनका पिछला इतिहास जो स्वार्थपरता की कहानी कह रहा है, उससे प्रकट होता है कि शायद वह भी वही करते, जो इस समय बाहुबली कर रहा था। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने जीवन में अनेक बार आता है, जब कर्त्तव्य के आगे उसे अपने पार्थिव जीवन के सभी सम्बन्ध छिन्न–भिन्न कर देने पड़ते है। और ऐसे भी अवसर आते हैं, जब भेड़–बकरीयों की तरह मनुष्य की नियति के सभी व्यंग्य चुपचाप, बिना किसी हील–हुज्जत के सह लेने पड़ते हैं। नहीं–नहीं, अगर आज वज्रबाहु स्वयं इस दशा में हैं, तो वह बाहुबली को किसी प्रकार भी उसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते।

यह सोच–विचार कर वज्रबाहु आने वाली विपत्ति के लिए तैयार हो गये। उन्हें अपने अन्दर अधिक बल का अनुभव हुआ।

राजमहल से थोड़ी दूर इधर ही भीड़–भाड़ छँट गई। यही टीस अधिक असहनीय हो रही थी। उनके दो सौ भट अपने महाराज को विचार मुद्रा में देखकर और उन्हें साहसपूर्वक विपत्ति के आगे बढ़ते हुए देखकर अपने कष्टों को भूल रहे थे। अब कर्त्तव्य वज्रबाहु का रह गया था, कि किस प्रकार वह अपने चेहरे पर एक भी शिकन न पड़ने दें। वह और भी अधिक सचेत होकर उस पर दृढ़ हो गये।

राजपुरूष उन्हें सीधे राजमहल ले गये। वहाँ आकर प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे से अलग कर दिया गया। वज्रबाहु को अकेले ही एक कक्ष में ले जाया गया। वह कक्ष खाली था। राजपुरूष उन्हें वहाँ अकेले छोड़कर द्वार बन्द करके चले गये। धन्य है बाहुबली, जो ऐसे अपमान के अवसर पर भी एक राजा का सम्मान करना नहीं भूले थे! वह राज्योचित ढ़ग से बन्दी किये गये थे।

निढ़ाल से होकर वज्रबाहु पास ही पड़े एक पलंग पर बैठ गये, दोंनो हाथ से उन्होंने मस्तक को थाम लिया, गत दिवसों में उनके मस्तिष्क ने इतना सोचा था, इतना परिश्रम किया था, कि अब उसमें दर्द उठ खड़ा हुआ था। किन्तु अभी तो उनके देखने–समझने के लिए बहुत कुछ बाकी था।

वज्रबाहु के कक्ष का वही द्वार जो राजपुरूष बन्द करके चले गये थे उनके जाने के कुछ देर के बाद फिर खुला। उसके दोनों पट पूरे–पूरे खुल गये और वज्रबाहु ने जो सिर उठाकर देखा, तो उन्हें बाहुबली द्वार के बीचों–बीच खड़े दिखाई दिये।

आश्चर्य से वज्रबाहु उठ खड़े हुए। उन्हें यह आशा नहीं थी, कि इस स्थिति में बाहुबली स्वयं उनके सामने आने का कष्ट करेंगे। चाहे जो भी सत्य के आधार पर हो, बाहुबली ने अपने मित्र को बन्दी किया था, और मनुष्य चाहे जितना क्रूर कृत्य कर सकता है, किन्तु उसकी आँखें उन कृत्यों का देखना भी चाहेंगी यह नहीं होता। कम–से–कम बाहुबली जैसे व्यक्ति के बारे में ऐसा नहीं सोचा जा सकता।

बाहुबली गंभीर मुद्रा में भीतर आये। उन्होंने गंभीर ही वाणी से पुछा, "हमें आशा है कि हमारे मित्र को कोई अनुचित कष्ट नहीं हुआ ?"

वज्रबाहु कष्ट का नाम सुनकर इस विपत्ति में भी हँस पड़े, फिर स्थिर होकर उन्होंने कहा, "रहस्य सदा कष्टदायक होता है, महाराज बहुबाली। जो नहीं जानता वह किस रास्ते जा रहा है उसका चलना अंधेरे में चलना है, और अन्धेरा दुःख देता है!"

बाहुबली भी हँसे, "आप अपने मित्र के घर हैं, क्या यहाँ सन्तोष काफी नहीं है, हम आपके यहाँ होते, तो हमें संतोष होता, चाहे हम जिस दशा में भी होते।"

" हम आपके मित्र होने के योग्य नहीं हैं," महाराज वज्रबाहु दुःखित स्वर में बोले– "मित्रता समानता में होती है। बली ही बली का मित्र हो सकता है। हमने मित्रता के दम्भ में अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मारी है। हमने आपको दुःख दिया, आपसे आपकी प्रेयसी छीनी, अपना बल और वैभव खोया, दर–दर की खाक छानी; यहाँ तक की हमने अपनी स्वतन्त्रता खो दी। नहीं हम किसी भी दशा में आपके समान नहीं हैं। नहीं, महाराज बाहुबली, हम आपके मित्र नहीं हैं।"

"कौन कहता है कि हम और आप समान नहीं हैं ? बाहुबली ने पास ही रखे फूलदान से दो फूल तोड़ते हुए कहा, "कौन हमसे राजनन्दिनी को छीन

सकता था यदि हम स्वयं अपने मित्र के आगे न झुक जाते ? कौन आपका बल और वैभव छीन सकता था, यदि आप हमें एक सत्तर सूचना भी भेज देते! और अब कौन है, जो आपकी स्वतन्त्रता छीन सकता है ? हम और आप समान हैं, महाराज वज्रबाहु, क्योंकि हमारे हृदय में मित्रता की भावनाएँ समान हैं। हम और आप मित्र हैं, और तब तक मित्र रहेंगे, जब तक सूर्य और चन्द्र अपनी किरणें पृथ्वी पर फेंकते रहेंगे।" और महाराज बाहुबली ने फूलदान में से तोड़े हुए फूलों में से एक महाराज वज्रबाहु की ओर बढ़ा दिया।

वज्रबाहु चित्रलिखित से खड़े रह गये। उन्होंने अचकचाकर एक बार बाहुबली के मुख की ओर देखा, फिर एक दृष्टि उस फूल पर डाली, जो उनकी ओर बढ़ाया गया था। किन्तु त्रसित मनुष्य सदा छलना से डरता है। विचारपूर्ण मुद्रा से पलकें झपकाकर महाराज वज्रबाहु ने कहा,"हम आपके बन्दी हैं, महाराज बाहुबली, और बन्दियों से हँसी करना आप जैसे सतपुरूष को शोभा नहीं देता। हम आपकी भावनाओं की श्रद्धा करते हैं। अब हम आपके बन्दी होने में भी गौरव का अनुभव करेंगे।"

बुद्धिमान् बाहुबली विक्षिप्त प्रायः महाराज वज्रबाहु की वेदना को समझ रहे थे। उन्होंने कहा, "आप स्वयं बन्दी होना चाहते थे, महाराज वज्रबाहु। न चाहते, तो पोदनपुर की धर्मशाला से उस गरीब ग्रामीण की सलाह मानकर स्वयं अपने मित्र के पास चले आते।"

वज्रबाहु चौंके। उन्होने बाहुबली के मुख की ओर देखकर एक बार फिर उस ग्रामीण की मुखाकृति का स्मरण किया और सारा रहस्य खुल गया। "तो आप ही ग्रामीण की वेश रखकर कल रात हमारे पास आये थे ?"

"और हमने आप को पहचान लिया था। हमें दुःख हुआ था कि ऐसी दशा में भी आप अपने मित्र के पास क्यों नहीं आये! हमें आश्चर्य भी हुआ था कि वे कौन से डाकू थे, जिन्होंने महाराज वज्रबाहु जैसे बली मण्डलेश्वर राजा को बीच रास्तें में लूट लिया था। फिर हमनें सोचा कि जो मित्र अपने आप नहीं आता, उसे जबरदस्ती ले आने का अधिकार एक मित्र को होता है। क्या आप नहीं मानते कि अपने मित्र की उपेक्षा करके, मित्र का अपमान किया था। मित्र का द्रोह किया था ? और हम आपको पकड़ लाये। हमारी भाभी रानी इस समय हमारे राजमहल में स्वतन्त्र घूम रही है। आपके भट स्नान–ध्यान से छुट्टी पाकर इस समय सुस्वादु भोजन से युद्ध करने में लगे हुए हैं और हमें पूर्ण

विश्वास है कि वे जीत जायँगे। अब कहिये आप'' और महाराज बाहुबली अपूर्व प्रसन्नता से इसी सरल हास्य का आनन्द उच्च घोष के साथ उठाने लगे।

अब महाराज वज्रबाहु का धैर्य टूट गया था। वह एकदम बाहुबली के चरणों की ओर झुके। "यह आपने क्या किया, महाराज बाहुबली! आपने हमें बन्दी ही नहीं, अपना दास बना लिया है। हम आपसे क्षमा चाहते है। कहिये कि आपने हमारी भूल के लिए हमें क्षमा कर दिया है, नहीं तो हम जन्मजन्मान्तर में भी कभी आपके ऋण से उऋण न हो सकेंगे, महाराज बाहुबली।"

बाहुबली ने वज्रबाहु के बीच में ही कन्धा पकड़कर उठा लिया और अपने गले से लगाते हुए वह बोले, " आपका स्थान हमारे चरणों में नहीं हैं, महाराज वज्रबाहु, हमारे हृदय में है क्या हमें अपनी मित्रता का सबूत देना पड़ेगा।"

वज्रबाहु की आँखों से उद्वेग की अश्रुधारा उमड़ पडी। कण्ठ रूँध हो जाने के कारण वह बाहुबली के प्रश्न का यथोचित उत्तर नहीं दे सके। किन्तु उनके आँसुओं ने वह उत्तर दे दिया।

उनकी पीठ पर आश्वासन का हाथ दबाकर बाहुबली ने कहा, "अब बताइए वह कौन है, जिसने हमारे मित्र को निःसहाय समझकर उसपर आक्रमण करने की धृष्टता की है ? वह कौन है, जिसके सिर पर बाहुबली की अजेय गदा मँडरा रही है ? हम भी तो देखें उस वीर को जिसने वज्रबाहु जैसे शूरवीर को पराजित कर दिया है।"

मनुष्य जब तक सुख का अनुभव नहीं करता, वह विपत्ति के ऊपर विपत्ति को फिर निमन्त्रण दे सकता है। किन्तु जब उसे सुख की अनुभूति हो जाती है, तब वह उसके वियोग होने की आशंका से त्रस्त होता है। बाहुबली ने उन्हें बन्दी नहीं किया था। यहाँ तक की बाहुबली को यह भी पता नहीं कि किसने वज्रबाहु के ऊपर आक्रमण किया है। यदि बाहुबली उन सब बातों को जान जाते, तो भी क्या उनकी वही भावना वज्रबाहु की ओर रहेगी ? यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका उत्तर एक क्षण में मिल जाना सहज नहीं था। निश्चय ही बाहुबली का चरित्र महान् था। निश्चय ही इस दशा में भी मित्र को पाकर उन्होंने उसका अपूर्व और आह्लादपूर्ण स्वागत किया था। किन्तु यह क्या तभी तक नहीं था, जब तक कि उन्हें यह मालूम नहीं हुआ कि वज्रबाहु जिसके द्वारा

त्रस्त है, वह और कोई नहीं चक्रवर्ती भरत के रूप में स्वयं उनका भाई है ? यदि बाहुबली को यह मालूम हो जाये कि भरत के भागे हुए शत्रु के रूप में स्वयं उनका मित्र हैं, जिसे उन्होंने अभी–अभी शरण दी है, तो क्या यह शरण बन्धन के रूप में नहीं बदल जायगी ?

ये सभी विचार महाराज वज्रबाहु के मन में विद्युत की भाँति एक क्षण में कौध गये। उन्होंने कहा,"यह सब न पुछो, मित्र, यदि आपको यह मालूम हो जायगा, तो सम्भव है कि ये बाहें फिर वज्रबाहु की रक्षा के लिए न उठ सकें।"

और इस बार फिर वज्रबाहु ने बाहुबली को समझने में भारी भूल की।

बाहुबली ने तीक्ष्ण दृष्टि से वज्रबाहु के मुख की ओर देखा। उसमें एक अनिर्वचनीय उपालम्भ का भाव था। उन्होंने तीव्र स्वर में कहा, " हमारे मित्र को हम पर विश्वास नहीं है। क्या आप चाहते है कि एक बार फिर हम आपको वचन दें, और आप उसकी रक्षा का तमाशा देखें ? तो देखिये हम वचन देते हैं.....

"नहीं–नहीं, महाराज बाहुबली।" वज्रबाहु ने उनके मुँह पर अपना हाथ रखकर कहा। ओह, बाहुबली का वचन, जैसे पत्थर पर खुदा हुआ अमिट लेख! क्या परिणाम नहीं हुआ उसका अतीत में ? काश कि बाहुबली अपने वचन को तोड़ सकते। तब शायद इस स्थिति में वज्रबाहु को सन्तोष होता। उन्होंने कहा– "नहीं, महाराज बाहुबली आप इतने ऊँचे है कि हम आपको पहचानने में बार–बार धोखा खा जाते है।"

"महाराज वज्रबाहु, अपने हृदय से उस आतंक को निकाल डालिये जिसने आपके कष्टों के साथ–साथ आपके बलवान हृदय पर भी अपना सिक्का जमा लिया है। आपने एक बार पोदनपुर में कदम रखा है, तो अब कोई आपकी इच्छा के बिना आपको यहाँ से बाहुबली के जीते जी नहीं निकाल सकता। और यही हमारा वचन है। अब बताइये।

वज्रबाहु ने एक बार करूणार्द दृष्टि से बाहुबली के मुख की ओर देखा। यहाँ एक झीनी मुस्कराहट और अपने बल का विनम्र गर्व विराजमान था। इस समय उन्हें अपने शत्रु का नाम बताना ऐसा था, जैसा मिठाई के बदले में किसी को जहर देना। वह वज्रबाहु के, अपने प्रियतम मित्र के विरोधी के रूप में अपने भाई का नाम सुनेगे, और किस बुरी खींचतान में उनका बलशाली हृदय बन्दी हो जायेगा। इसका अनुमान सहज ही हो सकता था।

किन्तु यदि यह बताने से बाहुबली को दुःख होना अवश्यम्भावी ही था, तो आज न सही, कल सही, बाहुबली को सत्य का ज्ञान होकर ही रहेगा। बाहुबली अभी उस सत्य को जानने के लिए, जो फिर एक बार वज्रबाहु से वचनबद्ध हो गये, वह भी केवल वज्रबाहु की विपत्ति का अता–पता जानने के बहाने उनकी ही भलाई की कामना से। अपने मित्र की महत्ता का दिग्दर्शन करके वज्रबाहु की इच्छा हुई कि बार–बार उनके हाथ को चूम, उनकी पूजा करें।

"बताइये ?" बाहुबली ने उन्हें विचार–तन्द्रा से सचेत करते हुए कहा। वह भी जानते थे कि जिस शत्रु का नाम जानने के लिए वह वज्रबाहु पर जोर दे रहे थे; वह निश्चयतः कोई ऐसा शत्रु था, जिसे शायद न जानना ही हितकर हो। किन्तु उन्हें अपने बल पर विश्वास था।

वज्रबाहु ने धीमे स्वर में केवल एक ही शब्द कहा "भरत"

"भरत!" आश्चर्य से महाराज बाहुबली के मुँह से निकला।

"हाँ, अयोध्या का नरेश, भरत", वज्रबाहु ने स्वर में चेतना लाकर कहा।

"वही एक ऐसा अभिमानी राजा है, जो कहता है कि जो राज्य उसके कदमों पर अपना सिर नहीं झुकता, उसे राजा होने का कोई अधिकार नहीं है। किसमें इतना साहस है जो आज के युग में भरत से भय न खाय ?"

"नहीं–नहीं, महाराज वज्रबाहु, हमें गलत न समझिये।" बाहुबली ने कहा। "हमें भय नहीं हुआ, हमने भी उसी माँ का दूध पिया है। जिसका भरत ने पिया था। हम भी उसी पिता की छत्र–छाया के नीचे पले हैं, जिसमें भरत पला है। हमें अफसोस हुआ। हमें निराशा हुई। भरत ने, हमारे भाई ने ऐसा किया, हमें इसी से दुःख हुआ, मित्र! खैर, भाई ने जख्म किया है, तो भाई ही मरहम लगाएगा। भाई होने के नाते हम भरत से युद्ध तो नहीं कर सकेंगे। किन्तु मित्र, हमारी बाहों का स्नेह–बन्धन अब कभी ढीला न होगा। आप पोदनपुर को ही अपनी राजधानी समझें।" और बाहुबली की आँखें तेज से चमक उठीं।

बाहुबली ने भलाई की सीमा लाँघ ली थी। कहाँ यह आशा कि बाहुबली भरत का नाम सुनते ही सोच में पड़ जायेंगे और उन्हें जिस किसी प्रकार पोदनपुर से निर्वासित करने की चेष्टा करेंगे, और कहाँ बाहुबली का बढ़ता हुआ स्नेह! महाराज बाहुबली ने आगे बढ़कर वज्रबाहु का हाथ अपने हाथ में लिया और उसे श्रद्धा और स्नेह के मिलन से दबा दिया। धन्य है बाहुबली, और धन्य है वह माता, जिसकी कोख से नर–रत्न ने इस पृथ्वी को दैदीप्यमान किया।

16

दिग्विजयी भरत का जय–अभियान समाप्त हो गया था। थकी–हारी विजयी सेनाएँ अयोध्या के मार्ग पर थीं। घर वापस लौटने का जोश उनमें था, विजय का उन्माद उनमें था, और था अपने खोये हुए भाइयों के लिए शोक। यही सब वे अपने गीतों में व्यक्त करते चले जा रहे थे।

भरत का मुक्त हृदय पुत्र विशाल कीर्ति पिता से अधिक प्रसन्न दृष्टिगोचर हो रहा था। वह हर्ष से अपने चारों ओर का वातावरण निरखता चला जा रहा था। उसका अश्व अपनी पूरी गति का प्रदर्शन न कर सकने के कारण मचल रहा था। अकस्मात् उसकी आँखें सुदूर उठती हुई धुएँ की एक काली रेखा पर गई और वह मन में कुछ सोचता हुआ चक्रवर्ती के रथ के निकट आया।

"पिताजी, इस ओर पोदनपुर का ही मार्ग तो जाता है न ?"

"हाँ कुमार" भरत ने उत्तर में कहा। फिर वह हँसे। "क्यों, चाचा से मिलने की इच्छा हो आई है क्या ?"

"उन्हें देखे हुए बहुत दिन हो गये, पिताजी! जी चाहता है कि एक बार फिर उनका स्नेह मिले। फिर कब इतनी दूर आना होता है।" विशाल–कीर्ति ने उसी दिशा की ओर देखते हुए कहा।

भरत कुछ विचारमग्न हो गये। उन्हें बाहुबली का हँसता हुआ चेहरा याद आ गया। सचमुच कितने दिन हो गये हैं, बाहुबली को देखे हुए। इधर

दिग्विजय के चक्र में वह मानो बाहुबली को भूल ही गये थे। विशाल–कीर्ति के साथ उनकी दृष्टि भी पोदनपुर की ओर गई, और गम्भीरता के साथ उन्होंने कहा, "कुमार, एक बार पोदनपुर जाने की इच्छा तो हमारी भी थी। किन्तु, इधर अयोध्या से निकले हुए भी बहुत दिन हो गये हैं। तुम अवश्य जाओ। बाहु से हमारा सन्देश कहना। कहना कि भरत उसे देखने के लिए तड़प रहा है। अयोध्या में चक्रवर्ती राज्य का अभिषेक होगा। देश–देश के राजा आयेंगे। हम बाहुबली की प्रतीक्षा करेंगे।"

विशालकीर्ति लगभग पाँच सौ सैनिक के साथ दिन ढलते–ढलते पोदनपुर पहुँच गया। मुख्य द्वार के प्रहरी ने दूर से ही इस आते हुए सार्थको देखा। साथ ही वन की सुदूर स्थित चौकी से एक अश्वारोही दौड़ता हुआ आया। द्वार खुलकर फिर बन्द हो गये। वह राजमार्ग पर दौड़ चला।

महाराज वज्रबाहु स्नान–ध्यान से छुट्टी पाकर उस समय विहार के लिए राजमहल की सीढ़ियाँ उतर रहे थे। उन्होंने अश्वारोही को देखा और वहीं ठिठकर खड़े हो गये। अश्वारोही उन्हें देखकर प्रणाम करने के लिए अश्व को रोककर उतर पड़ा और दोनों हाथ जोड़कर माथे से लगाते हुए उसने कहा "महाराज की जय, भरत कुमार लगभग एक सहत्र सैनिकों के साथ इसी ओर आ रहे हैं। महाराज बाहुबली इस समय किस स्थान पर हैं ? उन्हें शीघ्र ही सूचना देना आवश्यक है।"

सुनते ही वज्रबाहु के पैरों तले की मिट्टी खिसक गई। उन्होंने शीघ्रता से वापस लौटने का उपक्रम करते हुए कहा " चिन्ता न करो। हम जाते है। तुम वापस जा सकते हो।"

संवादाता कुछ हिचका। किन्तु महाराज वज्रबाहु को वापस जाते देखकर वह पुनः अपने अश्व पर सवार होकर जिधर से आया था उसी ओर प्रयाण कर गया।

बाहुबली राजमहल की विस्तीर्ण वाटिका के फूलों को अपने हाथों से सींच रहे थे। महाराज वज्रबाहु को अपनी ओर आते देखकर वह पानी का बर्तन हाथ में लिए–लिए ही सीधे खड़े हो गये। "क्या बात है, महाराज वज्रबाहु, इस प्रकार झपटते हुए किधर को जाने का विचार है ?"

आश्चर्य से बाहुबली के कार्य को देखते हुए उन्होंने कहा, " आपने तो लगता है, यहाँ से राजमाली को ही छुट्टी दे दी है। उधर भरत के लगभग डेढ़–दो सहत्र सैनिक पोदनपुर के द्वार पर खड़े हैं।"

बाहुबली के हाथ से पानी का बर्तन छूट पड़ा– "कौन है उनके साथ ?"

महाराज वज्रबाहु ने उस गिरे हुए बर्तन को देखकर बाहुबली के मुख को टटोलती हुई दृष्टि से निखारते हुए कहा, "भरत ने अपने पुत्र को भेजा है।"

"ओह, विशाल आया है।" बाहुबली ने सन्तोष की साँस लेते हुए कहा। "बड़ा सुशील लड़का है वह। आप देखेंगे, तो बिना उसकी प्रशंसा किये आपसे भी नहीं रहा जायगा। वह अवश्य, अपने चाचा से मिलने आया होगा। हमारे प्रति उसका बहुत मोह था।"

"विजय की तरंग में कोई किसी से मिलने नहीं आता, महाराज बाहुबली। इस आगमन का सही पक्ष सोचिये। हम इस समय भी आपको अपनी चिन्ता से मुक्त करने के लिए तैयार हैं। भाग्यहीन का साथ देना स्वयं दुर्भाग्य को न्योता देना है मित्र," वज्रबाहु ने सरलता से कहा।

बाहुबली ने क्षुब्ध स्वर में कहा "वज्रबाहु, मित्र हम तुम्हें कब विश्वास दिला सकेंगे कि हम तुम्हारे मित्र हैं।'

इस 'आप' के बजाय 'तुम' के सम्बोधन में वज्रबाहु को अधिक अपनत्व की आभा दिखाई दी। फिर भी उन्होंने कहा, "सो, अब किसे विश्वास नहीं होगा ? किन्तु हम चाहते है कि अयोध्या के युवराज का स्वागत उससे भी अधिक सैनिक प्रदर्शन के साथ होना चाहिए, जितने कि वह लाया है।"

17

विशालकीर्ति के लिए पोदनपुर के फाटक खोल दिये गये। वह आन–बान के साथ दुर्ग में आया। किन्तु वहाँ सहत्रों सैनिको का जमघट देखकर उसे अपार हर्ष हुआ। इतने में उसे बाहुबली अपनी ओर आते हुए दिखाई दिये और वह सब–कुछ भूलकर उनकी ओर शीघ्रता से बढ़ा। अयोध्या

के राजपरिवार के वे चाचा–भतीजे एक–दूसरे के गले लिपट गये। बाहुबली ने हर्षातिरेक से कहा, "इतने दिन हो गये। कभी तुमने अपने चाचा की सुध नहीं ली, बेटा! तुम्हारे सिरपर हमारा यह सबसे बड़ा उलाहना हैं।"

कुमार प्रसन्नता से फूल उठा! "आप भी तो अयोध्या बिल्कुल ही भूल गये, चाचाजी। हम सबकी आपसे बहुत बड़ी शिकायत है। उधर पिताजी ने सारी पृथ्वी की दिग्विजय करके चक्रवर्तीपद प्राप्त किया है। आपको बहुत आग्रह के साथ याद भी तो किया है पिताजी ने। अयोध्या में चक्रवर्ती पद को प्रतिष्ठित करने के लिए महान् राज्याभिषेक होगा। अब जब चलेंगे, तो मैं अपने चाचाजी को अपने साथ लेकर चलूगाँ।"

बाहुबली ने हँसते हुए कहा "भैया का राज्याभिषेक होगा, क्यों नहीं चलेंगे हम ? हम क्या किसी से पीछे रहेंगे ?"

"किन्तु आपने क्या इतना आडम्बर मेरे ही स्वागत में किया है, चाचाजी ? मैं तो आपकी गोद में खेलता हुआ वही बालक हूँ।"

"अब तुम बड़े हो गये हो, कुमार। अयोध्या के राजकुमार का स्वागत उसकी प्रतिष्ठा के अनुसार ही होना चाहिये।"

विशानकीर्ति ने कहा "और चाचाजी, आप भी तो उतने ही बड़े हो गये है।" और दोनों ही हँस पड़े।

"आओ, चले।" और बाहुबली विशालकीर्ति को लेकर राजमहल में आये।

इसी बीच महाराज वज्रबाहु ने कुमार के सामने आने की कोई चेष्ट नहीं की। उनकी आशंका निर्मूल प्रमाणित हुई थी, किन्तु अभी एक आशंका गर्भ में थी। जब भी कुमार यह जान पायगा कि उन्होंने बाहुबली के यहाँ शरण ली है तो इस राजसी भतीजे का समस्त स्नेह क्या चाचा के सामने उन्हें भरत को सौंप देने के आग्रह में बदल नहीं जायगा ? किन्तु वह उन्हें बाहुबली के प्रति अकथनीय विश्वास था। इस विश्वास के सहारे वह अपने हृदय की हलचल को दबाये विशालकीर्ति से छिपे–छिपे बाहुबली के राजमहल में घूमने लगे।

संध्या के समय प्रतिहार ने बाहुबली का निमन्त्रण दिया। साथ ही भोजन करने का कार्यक्रम भी उन्हें बता दिया गया। वज्रबाहु बड़े असमन्जस में पड़े। क्या चाहते है बाहुबली, यह वह नहीं समझ सके। भोजन पर भरत का कुमार भी उपस्थित होगा। तब संघर्ष की नौबत भी आ सकती है। वज्रबाहु ने इसके लिए अपने को तैयार किया। रानी को संभावित विपत्ति की सूचना देकर उन्होंने बाहुबली के आवास की ओर पग बढ़ाये।

उनका भय सही था। वहाँ महामन्त्री के साथ विशालकीर्ति अपनी विजय की कहानी, शौर्य की गाथा बड़े मजे से सुना रहा था।

"....सबसे कठिन मोर्चा रतनपुर का था, महामन्त्री जी! वह तो जैसे सैनिकों का मृत्यु–यज्ञ था। अयोध्या के वीरों की गाथा रतनपुर के दुर्ग की चारदीवारी पर सदा–सदा के लिए खुद गई।"

"कुछ भी हो, कुमार", महामन्त्री ने कहा–"यह व्यर्थ का रक्तपात है।"

इतने में बाहुबली तथा महाराजा वज्रबाहु अपने–अपने आसन पर आकर बैठ गये। विशालकीर्ति ने हाथ जोड़कर महाराज वज्रबाहु को नमस्कार किया। किन्तु उन पर उसकी दृष्टि केवल एक क्षण टिकी और फिर वह महामन्त्री की बात पर विस्मय प्रकट करते हुए बोल उठे, "आप इसे व्यर्थ का रक्तपात बताते है। छोटे–छोटे राजा जब चाहें तब एक–दूसरे के ऊपर आक्रमण करके आसपास की शान्ति को भंग कर देते थे, क्या यह व्यर्थ का रक्तपात नहीं था। रक्तपात तो होता ही है। किन्तु एक बार हो जाने के बाद अब वे एक बलशाली ध्वजा के नीचे आ गए है और अब रक्तपात सदा के लिए बन्द हो गया है। क्या नहीं हुआ है, क्यों चाचाजी!"

वज्रबाहु को आश्चर्य के साथ–साथ संतोष भी हुआ कि विशालकीर्ति उन्हें नहीं पहचान सका। पहचान भी कैसे सकता था। उसने उन्हें कभी पहले देखा हो, तब न। कुमार के प्रणाम के उत्तर में उन्होंने उसकी ओर आशीष का हाथ उठाया था।

बाहुबली ने कुमार को क्यों का उत्तर दिया "संसार का रक्तपात अपने सिर ले लेने से किसी पुण्य की प्राप्ति नहीं होती, युवराज। अपने को सर्वोच्च प्रमाणित करने के लिए यह केवल एक तर्क हैं, जिसकी नींव वास्तविकता के

आधार पर नहीं हैं। जो रक्तपात धीरे–धीरे होता उसके लिए तुरन्त एक महान शोणितयज्ञ करके उसकी महत्ता प्रमाणित नहीं की जा सकती। हमें तो दुःख है कि संसार के खून–खराबे को रोकने के लिए अयोध्या के निवासीयों को अपना रक्त बहाना पड़ा। यह केवल भैया की दिग्विजय की कामना ही थी और कुछ नहीं।"

कुमार को यह उत्तर बाहुबली के मुँह से सुनने की आशा नहीं थी। किन्तु बाहुबली स्पष्टवादी थे और क्योंकि आरम्भ विशालकीर्ति की ओर से हुआ था। इसलिए वह इस बात की दिशा दूसरी ओर मोड़ने के लिए स्वयं ही एक भारी हँसी हँसा। "चाचाजी प्रकांड शान्तिप्रेमी हैं।" उसने कहा।

किन्तु स्पष्ट कहने वाला व्यक्ति यदि साथ में बुद्धिमान भी हो, तो वह अपनी कही हुई बात के निशाने को भी समझ लेता है। बाहुबली इस हँसी के भीतर छिपा कुमार के हृदय का वह घाव समझ गए। किन्तु केवल इतनी–सी बात पर उनमें और विशाल में कोई संघर्ष नहीं होने जा रहा था। इसलिए वह कुमार की हँसी में योग देने के लिए मुसकरा उठे।

भोजन आरम्भ हुआ। बाहुबली ने कुमार को लक्ष्य करके कहा "अब हम तुमसे एक प्रश्न पूछते हैं, कुमार, बताओगे ?"

विशालकीर्ति किसी ऐसी ही चर्चा की खोज में था। वह प्रसन्नता के साथ बोला, "एक नहीं दो, चाचाजी। एक से मेरा पेट नहीं भरेगा।"

"तो बताओ," बाहुबली ने कहा। "तुम शत्रुता की क्या व्याख्या करते हो ?"

दो प्रश्न की माँग करने वाला कुमार विशालकीर्ति बाहुबली के इस एक प्रयन से चौंक गये। उसने विद्याएँ पढ़ी थीं और उसे उनका गर्व भी था। उसने कहा, "तनिक स्पष्ट कीजिए न, चाचाजी!"

उत्तर सुनने के लिए सभी की दृष्टि जो विशालकीर्ति की ओर उठ गई थी। अब ये बाहुबली की ओर जा टिकीं। केवल कुमार को छोड़कर महामन्त्री और वज्रबाहु दोनो समझ गये थे कि बाहुबली बात की दिशा किस ओर मोड़ना चाहते थे। वज्रबाहु बेचैनी से आसन बदल कर बाहुबली को देखने लगे।

बाहुबली भोजन की ओर से उदासीन नहीं थे। उन्होंने प्रश्न करके ग्रास तोड़ लिया था। उसे रोककर उन्होंने कहा, "तुम शक्तिशाली अयोध्या के युवराज हो, पुत्र। तुम महाबली चक्रवर्ती भरत के बेटे हो। इस दिग्विजय में तुमने जहाँ मित्र बनाए हैं, वहाँ अपने शत्रु भी बनाए हैं, क्योंकि शक्ति के बलपर भी सार्वभौम मित्रता की स्थापना नहीं की जा सकती। राजनैतिक मित्रता साधारण मित्रता से बिल्कुल उलटी नीति पर चलती हैं। आगे भी सम्भव है तुम्हें शत्रु बनने की आवश्यकता पड़े। हम पूछना चाहते हैं तुमसे कि, किन–किन अवस्थाओं में शत्रु मित्र होता है और किन–किन अवस्थाओं में वह शत्रु होता है ?"

विशालकीर्ति को शायद पहले कभी इस प्रकार के दर्शन से सामना नहीं पड़ा था। किन्तु प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए उसे अधिक दूर नहीं जाना पड़ा। उसने तुरन्त उत्तर दिया: शत्रु केवल युद्ध स्थल में ही शत्रु होता है, चाचाजी। इसके अतिरिक्त वह प्रत्येक अवस्था में मित्र होता हैं।"

"धन्य है, कुमार! हमें तुमसे इसी उत्तर की आशा थी," बाहुबली मजे में रोका हुआ भोजन उदरस्थ करते हुए बोले, "अपना उत्तर याद रखना। सम्भव है निकट भविष्य में ही तुम्हें फिर उसे याद करने की आवश्यकता पड़ जाए।"

"उत्तर तो आपने ही सुझाया है, चाचाजी", कुमार ने कहा। "और आपकी बताई हुई प्रत्येक बात मेरे याद रहती है।"

बाहुबली और विशालकीर्ति के अनोखे प्रश्नोत्तर से वज्रबाहु के दिल को चैन मिला, यह नहीं कहा जा सकता। उसे राहत तो हुई, किन्तु अपना राज्य और वैभव खोने का जो शोक उनके मन में था, वह बहुत गहरे में अपनी जड़ जमा चुका था।

निमन्त्रण का उद्देश्य केवल इतना ही था। बाहुबली चाहते थे कि वज्रबाहु कुमार के निकट होकर उसे समझ लें। यह भी समझ लें कि कुमार उन्हें पहचानता तक नहीं। साथ ही अपने प्रश्न का मनोकूल उत्तर पाकर उन्हें भी विश्वास हो गया था, कि वज्रबाहु को अब भरत की ओर से किसी प्रकार संशय–भय नहीं रह जाएगा। किस प्रकार वज्रबाहु के सामने कुमार को लाकर उनकी मैत्री पर मुहर लगा दी जाए, यह बाद की बात थी। और अधिकांश

महाराज वज्रबाहु की इच्छा और समझ पर निर्भर थी। अगले दिन सुबह उन्होंने महाराज वज्रबाहु को पकड़ कर यह कर्तव्य भी सम्पूर्ण कर देना चाहा।

बाहुबली ने यथोचित भूमिका बाँधीः "महाराज वज्रबाहु! हम आपसे कुछ कहना चाहते हैं।"

वज्रबाहु आश्चर्य प्रकट करते हुए बोले, "मित्र से मित्र यदि कुछ कहना चाहता है तो इसके लिए अनुमती लेनी आवश्यक नहीं होती।"

"फिर भी हम जो बात कहना चाहते हैं उससे हमारे मित्र के मन को कुछ चोट पहुँचने की आशंका है। आप जानते है कि भरत चक्रवर्ती आपका शत्रु है, किन्तु आप यह भी जानते हैं कि भरत हमारा भाई भी है। कुमार–विशालकीर्ति हमारा अतिथि बन कर आया है। हम उसका आतिथ्य आपके ऊपर सौंपना चाहते हैं कि जब तक उसे यह पता चले कि आप ही रतनपुर के शासक थे, वह आपके इतना निकट हो जाए कि उसके बाद उसको केवल आश्चर्य ही शेष रह जाए। आपको हमारी योजना पसन्द है ?" बाहुबली ने पूछा।

इस बात की सम्भावना तो थी, इसका उत्तर अभी तक वज्रबाहु नहीं सोच पाए थे। वह एक क्षण किंकर्त्तव्यविमूढ़ से खड़े रहे। फिर उन्होंने कहा "भरत के कुमार से हमारी कोई शत्रुता नहीं। किन्तु उसका आतिथ्य–सत्कार हमारे लिए जले पर नमक होगा। नहीं–नहीं, महाराज बाहुबली, हमें इसके लिए बाध्य न कीजिए।"

बाहुबली वह उत्तर सुन कर उदास हो गए। उन्होंने वज्रबाहु की भावना को समझना चाहा। और शायद वह समझ भी गये। किन्तु वह कठोर दुनिया के जीव थे। कोई बात ऐसी हो सकती है, जो मनुष्य के प्रयत्न से बाहर की हो, अथवा तर्कसम्मत कर्म से सुलझाई न जा सकती हो, ऐसा वह नहीं समझते थे। यही बात उन्होंने कही, "तर्क, हम सबसे बड़ा है, महाराज वज्रबाहु। हम आपको बाध्य नहीं करते। चाह कर भी नहीं कर सकते। किन्तु हम समझते हैं कि इस विषय में आपको बहुत कुछ सोचना बाकी है। हम आपके अन्तिम उत्तर की प्रतीक्षा करेंगे।"

बाहुबली तो यह कहकर चले गये। वज्रबाहु अपने आवास पर आए। उन्हें चिन्तित देखकर महारानी ने पूछा, "आप उदास है; क्यों ?"

"हाँ, हम उदास हैं," महाराज वज्रबाहु ने कहा। "बाहुबली की इच्छा है कि हमारे शत्रु भरत का पुत्र हमारा मेहमान बने। हम बाहुबली को निराश करना नहीं चाहते। किन्तु, कौन अपने दुश्मन को इस तरह मेहमान बनाना पसन्द करेगा ?"

महारानी के ऊपर इस बात की उलटी प्रतिक्रिया हुई। "भरत का पुत्र आज हमारा अतिथि होगा, तो कल भरत हमारा मित्र भी हो सकता है। हमारा राज्य और सम्पदा हमें वापस भी मिल सकती है। यह राजनीति है; नाथ! हमें राजनीति के प्रकार से ही अपनाइए।"

"हमें दान किया हुआ राज्य नहीं चाहिए।" वज्रबाहु तीखे स्वर में बोले। "जिस राज्य की रक्षा हम तलवार से नहीं कर सके, उसे इस प्रकार किसी से लेने के पश्चात् भी क्या हम बचा सकेंगे ? भरत ही क्या हमें स्वतन्त्र कर देगा ? नहीं, रानी, हमें ऐसा राज्य नहीं चाहिए।"

निदान संध्या समय, जब बाहुबली ने वज्रबाहु को फिर निमन्त्रण भिजवाया तो पता चलाकि महारनी की अस्वस्थता के कारण महाराज वज्रबाहु उन्हें लेकर समुद्र तट की सैर के लिए चले गये हैं।

18

कुमार विशालकीर्ति को भीतर ही भीतर चलते हुए सूक्ष्म संघर्ष का अनुमान भी नहीं था। न ही वह पोदनपुर में इन नीति–चर्चाओं के लिए आया ही था। वहाँ आने का उसका उद्देश्य जहाँ यह था कि वह अपने बिछड़े हुए चाचा के दर्शन करे, वहाँ मनोरंजन और अनवरत युद्ध से ऊब जाने का भाव भी था। अयोध्या में उसके पद के अनुपात में इतनी सभ्यता और शिष्टाचार उसके प्रति बरता जाता था कि वह उससे कुछ दिनों के लिए दूर होना चाहता था। पोदनपुर में उसके चाचा का प्रभुत्व था। वहाँ की सभ्यता और शिष्टाचार अयोध्या के मुकाबले सरल था, और कुमार बाहुबली से अधिक खुला हुआ भी था। वह किसी सीमा तक स्वच्छन्द था और उसका उपयोग करना अपना परम अधिकार समझता था।

उस दिन के आमंत्रण में उसका योग अपेक्षित नहीं था। अतः वह राजमहल से सटे हुए केलि–सरोवर में जल को उछाल–उछालकर स्नान का आनन्द ले रहा था। भृत्य सेवक और सैनिकों से दूर इस अकेलेपन में स्वयं की महत्ता और स्वयं का रस उसे बहुत भा रहा था। आसपास कोई जन नहीं था। वस्त्रादि किनारे की मनोहर दूबपर रखे हुए थे। ऊपर साफ आसमान था और नीचे स्वच्छ निर्मल जल।

किन्तु जब विशालकीर्ति इस आनन्द का उपभोग करके सरोवर से बाहर निकला, तो यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि उसके वस्त्र उस स्थान पर नहीं थे, जहाँ उन्हें रखकर वह सरोवर में घुसा था। केवल एक लँगोटी के अतिरिक्त उसके बदन पर अन्य कोई वस्त्र नहीं था और इस समय इस एकान्त में उसे कोई देखकर यह नहीं कह सकता था कि वह अयोध्या का युवराज है।

यह एक वानर महोदय की करतूत थी, जिसने भरत चक्रवर्ती के युवराज का बिल्कुल भी मुलाहजा नहीं किया था। वह चुपके से वस्त्र उठाकर पास ही में राज्योद्यान के वृक्ष पर जा बैठा था और बड़े संतोष के साथ उनकी सीवन उधेड़ कर उनके अस्तरों को हवा लगा रहा था।

लोग कहते है कि जब भाग्य का धोखा दो को मिलाता है तो संगोग की विचित्रता उसे दूर कर देती है। किन्तु यहाँ तो संयोग साधारण था। वज्रबाहु की सुयोग्य युवा राजकन्या उसी राज्योद्यान में अपनी सखी–सहेलियों के साथ आमोद–प्रमोद के किसी नये आयोजन में व्यस्त थी। सहसा ही एक सखी की निगाह ऊपर गयी और उसने वानरराज के करतब का निरिक्षण करके राजकुमारी का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। अब तो सब सखियाँ इसी आमोद–प्रमोद को सामने देखकर उसमें उलझ गईं। उनमें से एक दौड़ गई और राज्य–भंडार से व्यंजन का एक टुकड़ा लेकर आ गई। बड़े दिनों में वानरराज को ऐसे सुस्वादु भोजन की प्राप्ति हुई है और अपनी उचित दक्षिणा पाकर उन्होंने उन निरर्थक वस्त्रों का मोह त्याग दिया। तिरस्कृत वस्त्र ले देकर भूमिपर आ रहे।

अब उन वस्त्रों को लेकर खासा विचार–विमर्श चला। उनकी राजसी–सज्जा देखकर एक सखी ने कहा–"महाराज बाहुबली के तो नहीं है ?"

दूसरी बोली–" अजी ये, तो किसी बच्चे के है। महाराज बाहुबली का शरीर इतना छोटा–सा थोड़े ही है!"

"हमारे महाराज के भी नहीं हैं"– तीसरे ने कहा।

"तब तो किसी के भी नहीं है। आओ, इन्हीं का कुछ सदुपयोग किया जाय" पहली सखी ने राय दी।

कौन कहता है कि राजपरिवार के सभी व्यक्ति सभ्यता में पगे हुये होते हैं। मनोरंजन की जितनी पर्याय है उनमें कौन किसको सुहाती है, यह उनकी स्थिति और मनोरंजन की सुरक्षा इन दोनों पर निर्भर होती है। आयोजन नृत्य–संगीत का था और उसी में इन वस्त्रों को भी खपा दिया गया। एक जोड़ी मरदाने वस्त्र पहले से ही सखियों के पास थे। उनसे जो सखी नायक बनने वाली थी, केवल उसी का काम चल सकता था। किन्तु अब उनसे भी अच्छे इन जरा से फटे हुए वस्त्रों को पाकर उन वस्त्रों को पहनने वाली सखी को मजबूरन खलनायक का रूप धरना पड़ा और कुमार विशालकीर्ति के वस्त्र नायक के शरीर पर फब गये।

नृत्यगान का आरम्भ हुआ और मनोरंजन की सारिणी प्रवाहित हो चली। गानों में ही नायक और नायिका के रूप में राजकुमार के तीखे–तिरछे संवाद चले और खलनायक को खड़े–खड़े झुरना पड़ा, फिर वह अपने की लेकर मैदान में आया और नायिका के प्रति अपना अनुराग और नायक के प्रति अपनी घृणा नाना प्रकार के संगीत और हाव–भाव से व्यक्त करने लगा। सबकी सब भूल गई, कि नायक महोदय के वस्त्र उधार के ही हैं।

इधर नृत्यगान चल ही रहा था, कि कुमार विशालकीर्ति अपने वस्त्र खोजता हुआ उस ओर आ निकला। जब दूर से ही उसे ये टेढ़े–तिरछे संवाद सुनाई दिये, तो उसके कान खड़े हो गये और उस संगीतसुधा की वर्षा में वह भी भूल गया, कि उसके पास वस्त्र नहीं है और केवल एक लँगोटी ही उसे इस समय सभ्य मनुष्यों की श्रेणी में रख रही हैं।

उत्सव के निकट पहुँचकर उसे रस सागर ही उलटा हुआ मालूम दिया।उस स्थान पर अपनी अवांछनीयता का अनुभव करके उसे बड़ा संकोच हुआ और अभी वह अपने वस्त्रहीन तनकी और आशंका से निहार ही रहा था,

कि तभी राग–रंग की नायिका की ओर उसकी दृष्टि गई और वह आँखें फाड़े की फाड़े रह गया।

इतना मनोहर रूप और इतनी तीखी चितवनें, विशाल ने मन ही मन भगवान को याद किया, ताकि वह इस बाण से बच सके। किन्तु नायिकाओं की दृष्टिभेद मनोदशा जाने किस आंशका से भरी होती है, कि राजकुमारी की दृष्टि भी साथ–साथ उठी और कुमार विशालकीर्ति की दृष्टि से जा टकराई।

साथ ही सारा का सारा रागरंग बन्द हो गया। सबकी भयभीत नजरें इस सचमुच के नायक पर जा पड़ी और सभी विस्मय से उसकी निःवस्त्र, भूत जैसी आकृति के समीप अवलोकन में लग गई।

लज्जा और परिताप के कारण राजकुमारी तो मानों भूमि में गड़ ही गई, किन्तु, कुमार–विशालकीर्ति भी बगलें झाँकने लगे। साथियों ने तो यही समझा कि राज्योद्यान का घसियारा है, बस धवल बदन का रूप और मुख की परिताप मिश्रित मोहक भावभंगिमा अपनी कथा अलग ही कह रही थी।

सरोष राजकुमारी ने पूछा "कौन हो जी, तुम ? यहाँ क्यों आये हो ? जानते नहीं कि राज्योद्यान में स्त्रियों के मनोंरजन के स्थान पर पुरूषों का आना वर्जित है ?"

विशालकीर्ति सिटपिटा गया। "मेरे वस्त्र...." उसने सफाई के लिए अपने वस्त्र पहने हुए सभी की और इंगित किया। किन्तु इससे पहले कि वह सखी के जहर से बुझे उन वस्त्रों को चटपट अपने से अलग करके फेंकना आरम्भ करे , कुमार को और अधिक वहाँ ठहरना असम्भव जान पड़ा, और एक चोरी की, किन्तु तुरन्त पकड़ी गई। अन्तिम दृष्टि राजकुमारी पर ड़ालकर वह वहाँ से नौ–दो–ग्यारह हुआ।

"कौन थे यह ?" कुमारी चकित होते हुए बोली।

कुमार के वस्त्र उतारती हुई सखी बोल उठी। "अकल पर पत्थर पड़ गये! यह तो हमारे महाराज भरत के पुत्र कुमार विशालकीर्ति थे। वही जो महाराज बाहुबली के यहाँ अतिथि आये है, और हमारा ध्यान उस ओर गया ही नहीं। क्या सोचते होंगे अपने मन में ?"

"सोचेंगे ही क्या ?" 'खलनायक ने अपने लिए मैदान साफ देखकर कहा– "अब राजकुमारी मेरी है।" और इस बात पर हँसी का जो ठहाका लगा, तो फिर वहाँ से चलते–चलते भी नहीं रूका। केवल उस हँसी के बीच–बीच में राजकुमारी बसंततिलका, राजकुमार युवराज विशालकीर्ति के उस सुडौल बदन के मनोचित चित्र को देखने लगती है।

19

वहाँ से झपट कर युवराज विशाल महल के द्वार पर आए। एक सेवक को वस्त्र लाने का आदेश देकर उन्होंने उसे चलते–चलते रोककर पूछा, "उद्यान में कौन उत्सव मना रहा था ?"

नजरें नीची रखकर सेवक ने उत्तर दिया, "महाराज वज्रबाहु की कन्या राजकुमारी वसंततिलका अपनी सखियों के साथ उद्यान में गई थीं, कुमार...."

"महाराज वज्रबाहु, राजकुमारी वसंततिलका।" संपूर्ण विस्मय से कुमार के मुँह से निकला। वह विचार में डूब गया। फिर जब उसने कुछ देर बाद अपनी दृष्टि ऊपर उठाई, तो सेवक जा चुका था।

कुमार स्वयं राजमहल के भीतर चला गया। राह में ही सेवक वस्त्र लाता हुआ मिल गया। कुमार ने उसके हाथ से वस्त्र ले लिए और अपने कक्ष में आ गया। उसका मन कभी तो उस सुन्दरता और मनोज्ञता की मूर्ति की ओर जाता और कभी वह महाराज वज्रबाहु की बात सोचने लगता। क्या इसीलिए बाहुबली चाचाजी ने उससे शत्रुता की व्याख्या पूछी थी ? क्या इसीलिए उन्होंने उसे अपना उत्तर याद रखने के लिए कहा था। शत्रु केवल युद्धभूमि में शत्रु है, फिर वह मित्र है; अपने ही मुँह से निकले हुए यह शब्द कुमार के स्मृति पटल पर बार–बार आ–आकर टकराने लगे। कहना ही व्यर्थ है कि जिस मनोज्ञ प्रतिमा के दर्शन वह कुछ देर पहले विचित्रत परिस्थितियों में करके आया था। उसका ध्यान और उसकी मनोहरता ने उन शब्दों की तीव्रता को और भी बढ़ा दिया था।

"किन्तु चाचा बाहुबली! उन्होंने क्यों जानते–बुझते उसके पिता के सबसे बड़े शत्रु को शरण दी ? यह भी संभव है कि वह जानते ही न हों, कि वज्रबाहु भरत से युद्ध करके, अयोध्या के सहस्त्रों वीरों के प्राण अपनी जरा–सी

झख के ऊपर हरण करके आया है। किन्तु उस दशा में उन्हें कैसे भरत की शत्रुता का पता चलता और किस प्रकार वह विशालकीर्ति से, भरत के पुत्र से, वह प्रश्न पूछ सकते थे, जो उन्होंने पूछा था ? यदि महाराज वज्रबाहु बाहुबली के मित्र हों। तो क्या मित्र–मित्र को विपत्ति में शरण नहीं देगा ? फिर शत्रु केवल युद्धभूमि में ही शत्रु है..... ।''

अब क्या होगा इस शत्रुता की परम्परा को स्थिर रखने से ? क्या आवश्यकता है शेष जीवन में उस परंपरा को पालन करने की ? यदि यह मूर्खता की भी जाए, तो वह सुन्दर राजकुमारी वसंततिलका का, जिसने एक बार ही नजरों के सामने आकर उन्हें कुंठित कर दिया, किस प्रकार उसे चाह सकती है; किस प्रकार वह उससे प्रेम कर सकती है ? यदि विशालकीर्ति ने तनिक भी दूसरे के भावों को उसके चेहरे से पढ़ना सीखा है, जैसा कि चक्रवर्ती युवराज को सीखना ही चाहिए, तो वह विश्वास के साथ कह सकता है कि राजकुमारी वसंततिलका, हाँ महाराज वज्रबाहु की कन्या की उस प्रथम संकोचमयी दृष्टि में भी उसे देखकर एक कम्पन हुआ था, किन्तु, जब वह जानेगी कि कौन था वह वस्त्रहीन पुरूष, तो उसका हृदय अपनी दृष्टि की समस्त भावना भूलकर घोर घृणा और प्रतिकार की भावना से नहीं बदल जाएगा ? ओह, कितना कष्टदायक है वह विचार!

अब शत्रुता कायम रखने न रखने की बात छोड़ कुमार विशालकीर्ति का हृदय इस आशंका में ग्रस्त हो गया कि कहीं इस शत्रुता की बात वज्रबाहु ही न याद रखता चला जाय। वास्तव में जिसकी हानि होती है, जिसके दिल के साथ–साथ उसके तन–मन को भी चोट पहुँचती है, उसे विजेता की अपेक्षा कटुता की याद रखने और उसकी परम्परा की स्थिति रखने की अधिक आवश्यकता होती हैं। आवश्यकता न भी हो, तो उसकी सम्भावना उतनी ही निकट है, जितना प्यासे को पानी का ख्याल। इन्हीं भावनाओं में उलझा हुआ कुमार विशाल अपने वस्त्र जब भली–भाँति संवरण नहीं कर सका, उसने दर्पण में अपनी प्रतिकृति देखी, अपनी वीर आकृति को स्वयं ही मोह से निरखा, और उसके कदम आप ही आप उद्यान में खुले हुए राजमहल के द्वार की ओर उठ गये।

बाहर आकर प्रतिहार से पता चला कि इस समय उद्यान में उन्हें नहीं जाना चाहिए क्योंकि कुमारी सरोवर की ओर स्नान करने के लिए गई है, और उनकी सखियाँ भी उनके साथ है।

कुमार वापस आ गया। वास्तव में उसे स्वयं नहीं सूझ रहा था कि वह दोबारा उपवन में गया क्यों था ? यदि उसे राजकुमारी मिल भी जाती तो वह उससे क्या कहता ? वह स्वयं अपने पर हँस पड़ा। पोदनपुर की स्वच्छन्द हवा ने उस पर जरूरत से ज्यादा अपना असर जमा लिया है। क्या अयोध्या में भी ऐसा हो सकता था ?

किन्तु वापस अपने कक्ष में आकर भी उसे किसी करवट चैन न मिली। यह निश्चित था कि राजकुमारी वसन्ततिलका को देखते ही उसके हृदय में ऐसी हलचल मच गई है, जिसका उसे अपने पूर्व जीवन में कोई अनुभव नहीं था। न ही अपने जीवन में उसे किसी वस्तु के लिए अधिक देर तक तरसने की आदत थी। फिर किस प्रकार राजकुमारी वसन्ततिलका से अपना प्रेम निवेदन किया जाए, यह एक समस्या बनकर रह गई।

अपने ही विचारों से काफी देर तक संघर्ष करने के बाद विशालकीर्ति अपने कक्ष से निकल कर राजमहल की अटारी पर प्रकृति को निकट से देखने के लिए बाहर निकला। ऊपर–नीचे सब ओर दीपक जल चुके थे, और उनका प्रकाश, महल को सब ओर से आलोकित किये हुए था। केवल कुमार विशाल अपने हृदय में घोर अंधेरा अनुभव कर रहा था।

किन्तु कुमार के भी पहले कोई और ऊपर की अटारी की वायु का सेवन कर रहा था। कुमार जीने की पैड़ियों पर रूक गया। उसके हृदय की गति ने साक्षी दी और वह साँस रोककर खड़ा हो गया। सीढ़ियों का मोड़ समाप्त हो गया और आने वाले की छवि प्रकट हो गई। सौभाग्य कभी पूछकर नहीं आता।

कुमारी शायद किसी और ही ध्यान में थी। विशाल के बिल्कुल निकट तक आ जाने के बाद तक भी उसे पता न चला कि उसके अतिरिक्त कोई और भी सीढ़ियों पर है। किन्तु पास आने पर कुमार विशाल के नथुनों से निकली हुई गरम साँस उसके कपोलों को छू गई, और वह चिहुँक उठी। एकदम उसके मुँह से निकला, "कौन ?"

सरल स्वछन्द नेत्रों को एक बार उस रूप–राशि के दर्शनातिरेक से झपका कर कुमार ने उत्तर दिया–"मैं हूँ विशाल"

तब तक कुमार को एक नजर देखकर राजकुमारी ने उसे पहचान लिया था, यद्यपि अब वह इन्द्रराज का घसियारा नहीं लग रहा था। उसने सहसा पूछा "आप यहाँ सीढ़ियों पर क्या कर रहे हैं ?"

कुमार अब इसका क्या उत्तर दे। फिर भी उसने कहा " मैं एक अप्सरा के दर्शन कर रहा हूँ।"

राजकुमारी सिटपिटा गई। उसने सल्लज वाणी में कहा "मैं महाराज वज्रबाहु की कन्या हूँ; कोई अप्सरा नहीं हूँ और आप महाराज भरत के पुत्र हैं, क्या इतना भी आप नहीं समझते ? आप में और हममें पर्याप्त दूरी है।"

"कितनी दूरी है, गजों की कि कोसों की ?" कुमार ने शैतानी से पूछा।

राजकुमारी ने जो बात वास्तविकता के आधार पर बड़ी गम्भीरता से कही थी, उसे कुमार विशाल ने सरलता के प्रवाह में डुबो अवश्य दिया था, किन्तु उससे इस बात की महत्ता समाप्त नहीं हो जाती थी। राजकुमारी ने पहले तो उत्तर न देकर विशालकीर्ति की ओर अन्तर्भेदी दृष्टि से देखा। फिर वह स्वयं ही अपनी दृष्टि में किंचित् दोष पाकर सहम गई। उसे विशाल अच्छा लग रहा था। काश! वह भरत का पुत्र न होता। राजकुमारी ने विशाल की बात का उत्तर दिया:

"महाराज भरत ने हमसे हमारा देश छिना, हमारा घर बार छिना, हमें दर–दर की ठोकरें खिलाई। अब उनमें और हममें इतनी दूरी हो गई है कि वह एक ही बार नापी नहीं जा सकती। अब मैं जाऊँगी। मार्ग...."

कुमार ने उसकी बात सुने बिना ही कहा "हम उस दूरी को कम कर सकते हैं, देवी! हम उस दूरी को मिटा सकते है। केवल विचार की देर है। आपके मुँह से उस विचार का परिणाम सुनना चाहता हूँ, और कैसे कहूँ कि 'हाँ' मै सुनना चाहता हूँ ?"

यदि अवांछित प्रेमी को दुत्कारना होता, तो उसका तरीका दूसरा था। सीढियों पर जमकर तर्क–वितर्क करना उसका तरीका नहीं था। राजकुमारी जाने के लिए कह अवश्य रही थी, किन्तु वह जाने की कोई विशेष उत्सुकता नहीं दिखा रही थी। कुमार की बात सुनकर कुछ क्षण वह चुपचाप खड़ी रही।

वह अपने चारों ओर की परिस्थिति को समझना चाहती थी। फिर सचमुच ही उसने सभी बातों पर इतने अल्प समय में विचार करके कहा "हम इस दूरी को कम नहीं कर सकेंगे, युवराज! यह दूरी हममें नहीं है, हमारे अभिभवकों में है, और सब निर्णय केवल उन्हीं के ऊपर आश्रित है। अब मैं जाऊ ?"

"कैसे कहूँ कि जाओ ?" कुमार ने उलटा प्रश्न किया।

राजकुमारी मन ही मन मुस्करा उठी। सारी उत्तरदायित्व की बातें कुमार के ऊपर से चिकने घडे की तरह निकल गयी थीं। राजकुमारी के मन की मुस्कराहट उसके होठों पर हल्की स्मृति बनकर छा गई। उसने कहा " मैं महाराज बाहुबली से आपकी उद्दण्डता की बात कहूँगी।"

"बड़ी अच्छी बात है।" कुमार ने कहा। "इससे जो कुछ होना ही है वह तनिक शीघ्रता से हो जाएगा।"

"होना क्या है ?" राजकुमारी ने विस्मय से पूछा

"हमारा और तुम्हारा विवाह, महाराज वज्रबाहु में और पिताजी में मैत्री, और उत्सव"– कुमार ने मोदमयी वाणी में उत्तर दिया।

यदि पिताजी ने इस प्रकार मुझे देख लिया, तो वह तलवार से बात करेंगे," राजकुमारी की आशंका जाने का केवल बहाना नहीं थी। उसकी वाणी में भविष्य का भय बोल रहा था।

"तो वह अपने बच्चे का तलवार का खेल देखना चाहेंगे। यह तो हम रोज खेलते हैं।" कुमार ने सहास्य कहा।

इतने में सीढ़ियों के नीचे से एक तीव्र स्वर सुनाई पड़ा। "तो हम वह खेल देखना चाहते हैं, कुमार! नीचे उतर आओ।"

राजकुमारी ने उचककर अपने पिता को हाथ में नंगी तलवार लिए खड़े देखा। उसके मुँसे अनायास ही एक जोर की चीख निकल पड़ी।

20

कुमार ने घूमकर महाराज वज्रबाहु के मुँह से निकली हुई चुनौती को सुना। फिर चौंककर उसने राजकुमारी की चिल्लाहट को सुना, और एक बार फिर राजकुमारी की ओर दृष्टि डालकर वह गम्भीरता से सीढ़ियों से नीचे उतरा।

निमंत्रण का समय टालकर महाराज वज्रबाहु और उनकी रानी समुद्र तट से लौट आये थे। आते ही सबसे पहले राजकुमारी की पूछ हुई थी। दोंनो ने निर्भयता से एकांत में बैठकर एक निश्चय किया था। निश्चय हुआ था कि महाराज बाहुबली की बात मानकर कुमार को अपना अतिथि तो अवश्य बनाया जाए, किन्तु महाराज वज्रबाहु उसके सामने नहीं पड़ेंगे। राजकुमारी वसन्ततिलका के रूप–गुण की ओर से भी कन्या के पिता होने के नाते महाराज वज्रबाहु बेखबर नहीं थे। अतः उसे इस आयोजन की खबर कर देने और अपने आप भी कुमार की दृष्टि से लोप रहने का आदेश देने के लिए ही उसकी पुछताछ हुई थी। जब सदा साथ रहने वाली सखियाँ भी राजकुमारी का सन्तोषजनक अता–पता नहीं बता सकीं, तो निश्चय ही गम्भीरता का ख्याल करके महाराज वज्रबाहु स्वयं उसे देखने के लिए उपवन की ओर चले। राह में ही सीढ़ियों पर दोनों की बातें होती सुनकर वह ठिठक गये और बातों का सार ही उन्हें अन्तिम बातचीत से मालूम हो गया।

जिस समय सबसे अधिक धैर्य रखने की बात थी, उस समय साधारण मनुष्यों की तरह महाराज वज्रबाहु धैर्य न रख सके। आवश्यकता इस समय के एक कदम ने आते हुए समय की विचित्रता का इतिहास मानो वज्रबाहु और उनसे भी अधिक उनके परम मित्र महाराज बाहुबली के भाग्य पृष्ठों में अकिंत कर दिया।

कुमार विशालकीर्ति नीचे उतर आया। झाड़फानूसों का प्रकाश आँखों को चकाचौंध किये डाल रहा था। वज्रबाहु के हाथ में नंगी तलवार देखकर कुमार ने भी अपनी तलवार खींच ली। फिर उसने बिना आगे बढ़े ही अपनी जगह से अत्यन्त विनम्र स्वर में कहा–

"महाराज वज्रबाहु, मैं इस द्वन्द्व–युद्ध के लिए प्रस्तुत हूँ। किन्तु मैं हृदय

से आपको अपना माता–पिता मान चुका हूँ। इसलिए मैं अपनी तलवार से आप पर वार नहीं करूँगा। किन्तु, मैं क्षत्रिय भी हूँ। मैं अपनी तलवार से आपके वार को रोकूँगा, और तब तक रोकता रहूँगा, जब तक कि या तो आप थक नहीं जाते या मेरा प्राणान्त नहीं हो जाता। तलवार उठाइए!"

"बहुत दंभ है तुम्हें अपनी विद्या का। इतना भी जाना कि किसी कन्या से विवाह की बात करने से पहले उसके पिता से बातें करनी होती है ? अपनी भूल की सजा भुगतो; रोको वार!"

राजमहल की उस लम्बी देहलीज में तलवारों की खनखनाहट गूँजने लगी। आवाज सुनते ही कई दिशा से प्रतिहारी दौड़कर आए, किन्तु दोनो पक्षों में से किसी को भी अपने क्षेत्र के भीतर न समझकर वे सभी महाराज बाहुबली को सूचना देने के लिए दौड़ गये। कुछ लोंगो ने इस डर से कि कहीं प्रकाश की कमी के कारण ही कोई चोटपेट न खा जाए, अन्य स्थानों से दीपक लाकर वहाँ और अधिक प्रकाश कर दिया और स्वयं खड़े होकर इस अनिष्टकारी द्वन्द्व–युद्ध को देखने लगे।

किन्तु क्या यह द्वन्द्व–युद्ध था ? यह एक तरफा युद्ध महाराज वज्रबाहु के लिए हास्यजनक बन गया था। कुमार विशाल केवल अपना बचाव कर रहा था और यह रूख दिन के सूर्य की तरह सबके सामने उजागर था। किन्तु यही बात महाराज वज्रबाहु को और भी अधिक आपे से बाहर किये दे रही थी। यद्यपि वह भी अब यही कोशिश कर रहे थे, कि तलवार का सीधा वार कुमार पर न हो, बल्कि वह तलवार की मार के अन्दर इस प्रकार आ जाए कि फिर उसकी जान लेना और न लेना उनके अगले कदम की ही बाट देखने लगे। किसी प्रकार उनकी तलवार की नोक कुमार की छाती पर रखी जाए, और वह उससे आगे कभी अपनी कन्या की ओर न देखने का वचन लेकर उसे छोड़ दे। किन्तु उनकी यह भावना तो देखनें वालों के सामने किसी प्रकार प्रकट नहीं हो सकती थी। एक ओर बिना किसी के देखने के डर से राजकुमारी साँस रोके इस मरणान्तक संघर्ष का संचालन देख रही थी। उसकी आँखें किंचित फटी हुई थीं और साँस अब तो मानो रूक ही गई थी।

सूचना तीव्रगति से पर लगाकर सारे राजमहल में उड़ गई। जिधर से देखो मनुष्य इसी ओर चले आ रहे थे। किन्तु, महाराज बाहुबली को आने में भी अधिक देर नहीं लगी। उन्हें देखते ही सब लोंगो की जान में जान आई और उनके लिए तुरन्त मार्ग छोड़ दिया गया।

दोनों विरोधियों के दृष्टगत होते ही बाहुबली ने पुकारा "रोको युद्ध को, हम कहते है युद्ध को रोको!"

किन्तु उस समय तक शायद बाहुबली की आवाज महाराज वज्रबाहु के कानों में नहीं पड़ी और यह तो साफ ही प्रकट था कि कुमार कोई युद्ध नहीं लड़ रहा था। वास्तव में उसने रण–कौशल का अपूर्व प्रदर्शन किया था। उसने अब तक अपने वचन के अनुसार महाराज वज्रबाहु पर एक भी वार नहीं किया था, फिर भी उसका बदन पसीने तक से अछूता था। दूसरी और केवल क्रोध के कारण ही महाराज वज्रबाहु के मुख पर आग–सी जल रही थी और उसका रंग लाल हो चला था।

जब महाराज बाहुबली के रोकने से भी महाराज वज्रबाहु न रूके तो वह सन्तोष के साथ, निश्चय के साथ, दोनों पक्षों के बीचोंबीच जाकर खड़े हो गये।

अब महाराज वज्रबाहु के समझ में आया कि उनके अतिरिक्त और भी कोई घटना–स्थल पर है, और इसी समय उनकी तलवार हवा में उठी रह गई।

कुमार के चेहरे पर हल्की–सी मुस्कराहट आकर लोप हो गई। उसने एक नजर चुराकर राजकुमारी की ओर देखा और देखी उसके मुख पर सन्तोष की छाया।

महाराज बाहुबली ने एकत्र हो गए सेवकों की ओर उनके चले जाने की आशय से देखा और आज्ञाकारी सेवक अपने स्वामी का मन्तव्य समझकर तुरन्त वहाँ से चले गये। फिर महाराज वज्रबाहु की ओर लक्ष्य करके बाहुबली ने कहा "इतने अधीर हो मित्र ? युद्ध के लिए विधिवत् युद्ध की घोषणा भी नहीं की!"

तड़पकर महाराज बाहुबली की ओर देखते हुए वज्रबाहु ने उत्तर में कहा "राजपाट तो हम पहले ही गवाँ चुके थे। अब यहाँ आकर हमारी लाज पर भी डाका पडने लगा है।"

वज्रबाहु के स्वर की तीव्रता को लक्ष्य करके महाराज बाहुबली चौंक उठे। वह उनके मंतव्य को समझते हुए बोले "क्या कुमार ने आपको कुछ कह दिया है ?"

"और कहा ही क्या जा सकता है ?" वज्रबाहु ने कहा। "हमारे लिए तो बिना कहे ही कोई ठौर नहीं रही।"

महाराज बाहुबली ने अब पहली बार विशालकीर्ति की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि डाली। "कुमार, महाराज वज्रबाहु क्या कह रहे हैं ?"

नीची दृष्टि करके विशालकीर्ति ने कहा " मैं स्वयं महाराज वज्रबाहु को नहीं समझ सका, चाचाजी। मैने कुछ नहीं किया है। मुझे कुमारी वसंततिलका से कुछ बातचीत करते देखकर महाराज वज्रबाहु ने द्वन्द्व–युद्ध का न्यौता दिया और मुझे अपनी तलवार की रक्षा के लिए अपनी इच्छा के विरूद्ध लड़ना पडा। बस मुझे इतना ही कहना है। इसमें महाराज वज्रबाहु की लाज जाने का कोई प्रश्न नहीं उठता।"

कुमार विशालकीर्ति अपनी बात कहकर तुरन्त ही वहाँ से चला गया। उसके जाते ही राजकुमारी वसंततिलका भी उस स्थान से चली गई। उसे जो आंशका हो आई थी, वह निर्मूल हो गई थी और जिसे अनजाने में ही उसने अपना हृदय समर्पित कर दिया था, वह पूर्ण रूप से सुरक्षित था। अब बाद की बात को निभाना या न निभाना कुमार के ऊपर निर्भर था। यदि उसके पिता ही उसका विरोध करेंगे, तो कुलवान् लड़की के लिए चारा ही क्या रहता है।

अब महाराज वज्रबाहु ने भी अपनी तलवार म्यान में कर ली। बाहुबली वहाँ से धीरे–धीरे पलायन का उपक्रम करने लगे और महाराज वज्रबाहु अपने मन का उबाल मन में छिपाये साथ–साथ चले।

21

चलते–चलते महाराज बाहुबली ने कहा "महाराज वज्रबाहु, यदि इस समय आप अपने को शान्त अनुभव करते हो, तो क्या हम आपसे कुछ कहें ?"

"अवश्य कहिए, मैं शान्त हूँ।" महाराज वज्रबाहु ने अशान्त स्वर में कहा।

किन्तु अभी चर्चा गरम थी और बाहुबली उसे ठीक मौके पर ही पकड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा "जिस घटना पर आप उत्तेजित हो गये हैं, यदि आप शान्ति और गम्भीरता से उस पर ध्यान दें, तो सभी के एक बार सुखी होने की सम्भावना हैं।"

"यदि कुमार की ऐसी ही इच्छा थी, तो उसका ढंग दूसरा था, उसका मार्ग दूसरा था। वह हमसे याचना करता और हम सोचते।"

वज्रबाहु की बात सुनकर बाहुबली हँसे। " कोई लड़का कन्या के पिता से याचना नहीं करता, महाराज वज्रबाहु! कुमार ने केवल प्रेम की ओर कदम बढ़ाया था। आप भी एक बार बढ़ा चुके हैं। आपने कोई अपराध अगर नहीं किया था, तो हमारे विचार में कुमार ने भी नहीं किया। यह भरत से शत्रुता कायम रखने का समय नहीं हैं, मित्रता बनाने का समय है और हमारा विचार है इस दूरूह राह पर पग रखने से पहले कुमार विशाल ने भी इस बात को खूब अच्छी तरह सोच लिया होगा। अब हम आपका विचार जानना चाहते हैं।"

'नहीं', महाराज वज्रबाहु ने पहले से भी अधिक दृढ़ स्वर में उत्तर दिया। "जिस शत्रु के कारण आज हम अपने घर, अपने देश से विदेशी हो गये हैं, हम उसे अपनी कन्या, अपने मान–सम्मान की प्रतीक नहीं सौंप सकते।"

और इससे पहले कि बाहुबली कोई और तर्क वज्रबाहु के सामने रखें वज्रबाहु बीच राह में से ही वापस लौट गये।

बाहुबली, चिन्तित मुद्रा में अपने आवास पर आये। बहुत देर तक वह अपने मन के आन्दोलन को टटोलते–देखते बाहर के दालान में घूमते रहे। फिर उन्होंने एक प्रतिहारी को बुलाकर विशालकीर्ति को अपनी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा सुनाने को कहा।

कुछ देर बाद कुमार विशाल आ गया।

"कुमार," बिना उसकी ओर देखे ही बाहुबली ने कहा "हमें सब–कुछ मालूम हो गया है। गलती तुम्हारी थी। महाराज वज्रबाहु तुम्हारे पिता के शत्रु हैं, उनकी किसी भी वस्तु को अपनाते समय उनकी आज्ञा लेना उतना ही आवश्यक था, जितना चोरी का अपराध बचाकर किसी अन्य से उसकी वस्तु

माँगना। महाराज वज्रबाहु को सम्बन्ध किसी दशा में स्वीकार नहीं है। अतः यदि तुम्हें कुमारी वसन्ततिलका से मोह हो गया है तो सच्चे वीर की तरह उसे अपने मन से निकाल दो।"

यह आज्ञा सुनकर कुमार विशालकीर्ति हतबुद्धि हो गया। उसने करूणा से बाहुबली की ओर देखकर कहा "किन्तु चाचाजी, यह कैसे हो सकता है ? मैने उसे अपने प्रेम का आश्वासन दिया है, मैं कैसे उसे बीच मँझदार में छोड़ सकता हूँ ?"

बाहुबली ने कहा " कुमार, प्रेम अपने मन का वहम है। एक बार जब मनुष्य यह समझ लेता है कि मैं प्रेम को अखण्ड और अकाट्य समझने लगता है। किन्तु बहादुर व्यक्ति जब यह निश्चय कर लेता है कि यह स्थान उसके उपयुक्त नहीं है, तो वह उस प्रेम को किसी भी त्याज्य वस्तु की तरह ठोकर मार सकता है। हम तुमसे यही आशा करते हैं।"

"चाचाजी!" कुमार लगभग चिल्ला उठा। उसके हृदय पर गहरी चोट लगी थी।

"स्थिति को समझो, कुमार," बाहुबली पूर्व भाव से बोले "महाराज वज्रबाहु आज अगर सचमुच महाराज होते, यदि वह अपने प्रदेश के स्वतन्त्र शासक होते तो जैसे भी होता हम तुम्हारे लिए कुमारी वसन्ततिलका को लाकर छोड़ते। किन्तु आज वज्रबाहु हमारे आश्रित हैं। हम नहीं चाहते कि इस कारण उनके हृदय को चोट पहुँचे। उन पर किसी प्रकार का भी जोर डालना हमारी शक्ति से बाहर की बात है।"

"परन्तु यह सम्बन्ध उनकी कन्या को तो स्वीकार है, चाचाजी उन्हें इसमें फिर क्यों आपत्ति है ?" कुमार ने पूछा।

"कन्या का विवाह उसके पिता के अधिकार में होता है। वह तुम्हें अपना शत्रु समझते हैं ?"

कुमार ने उसी धारा में दूसरा प्रश्न किया: "क्षमा करें, चाचाजी! हमारा शत्रु हमारे ही घर में शरण लें, क्या यह कम अचरज की बात नहीं हैं ?"

"बाहुबली के यहाँ, वज्रबाहु ने क्यों आश्रय ले रखा है ?" महाराज बाहुबली कुमार के प्रश्न को सुनकर गम्भीर होते हुए बोले, "यदि अब भी तुम इसे नहीं समझ सके, तो तुम्हें और कुछ जानने का अधिकार नहीं है।"

"अधिकार क्यों नहीं है, चाचाजी ?" कुमार विशालकीर्ति ने तीसरा प्रश्न किया। "क्या हम आपके नहीं हैं ?" उसने आश्चर्य का भाव प्रकट किया। साथ ही उसने चौथा प्रश्न कर डाला, जिसने बाजी को किस कदर उलटा दिया, "अपने भाई के शत्रु को शरण देकर आप क्या मुँह लेकर उनके सामने जाएँगे ?"

बाहुबली पर जैसे सहस्त्रों मनों का वज्रपात हुआ। उन्होंने स्थिति को दो क्षण तोला। लगातार प्रश्नों की बाढ़ ने उनका मस्तिष्क गरम कर दिया। धीर–गम्भीर वाणी में उन्होंने कुमार के दोनों प्रश्नों का उत्तर एक साथ दिया। "हमें तुम्हारी बातों में उद्दडता की गंध आ रही है, कुमार।"

"यह मेरे उद्दण्ड होने–न–होने का प्रश्न नहीं है, " कुमार ने कहा, उसके सिर पर अपनी अनायास असफलता के कारण मानो भूत चढ़ गया था। "यह पिताजी की भी मान–मर्यादा का प्रश्न है। फिर आप कैसे इस बात को सहन करेंगे कि आप उनके किसी शत्रु को शरण दें ?"

बाहुबली ने अपने स्वर की गम्भीरता को ज्यों–का त्यों स्थिर रखकर कहा "यदि हमें तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर ही देना होता तो हम कहते कि वह इस बात को उसी तरह से सहन करेंगे, जिस तरह तुम्हारी जिद पूरी हो जाती। तब सहन करते। किन्तु आगे कोई प्रश्न पूछने से पहले याद रखो कि हम एक भाई ही नहीं हैं, एक राजा भी हैं। जब कोई व्यक्ति किसी स्वतन्त्र राजा की शरण में आता है, तो वह उसको शरण दे या न दे, यह पूछने के लिए अपने भाई के पास दौड़ा नहीं जाता। शरणागत को शरण देना प्रत्येक क्षत्रिय का पहला कर्तव्य है।"

यह बाहुबली का अन्तिम उत्तर था। उन्होंने कुमार को अपनी उपस्थिति से चले जाने के लिए द्वार की ओर इंगित किया।

तो बाहुबली अपने को स्वतन्त्र समझते है ? उन्हें अपनी स्वतन्त्रता का अभिमान है। फिर अयोध्या में जो वह चक्रवर्ती–पद का राज्याभिषेक होने वाला है, वह क्या सचमुच के चक्रवर्ती का राज्याभिषेक नहीं होगा ? यदि इस पृथ्वी पर एक भी राजा स्वतन्त्र रह जाता है तो कैसा चक्रवर्तित्व ? क्या पिताजी भी चाचा बाहुबली को स्वतन्त्र ही समझते हैं ? भाई–भाई के सम्बन्ध के चक्कर में अभी इस प्रश्न को कोई समुचित स्थान ही नहीं रहा ? विशालकीर्ति यह सब सोचते हुए बाहुबली के कक्ष से चला गया।

विशालकीर्ति लड़का है बाहुबली यह समझते रहे। एक क्षण को उन्हें जो उसपर रोष आया था वह कुछ देर बाद साधारण ढँग से तिरोहित हो गया। किन्तु उनके मस्तिष्क में भी एक प्रश्न ने गम्भीरता से एक अपूर्व समस्या लाकर रख दी। वह स्वतन्त्र हैं, किन्तु भाई होने के नाते क्या अब तक स्वतन्त्र है ? या भरत उन्हें बिना विरोध ही अपने अधीन मानकर अयोध्या के राज्याभिषेक में आने का न्यौता दे रहा है ? क्या उन्हें इस अपमानपूर्ण निमंत्रण को स्वीकार करना चाहिए ? क्या पहले यह तय होने की आवश्यकता नहीं है कि भरत उन्हें किस दृष्टि से अयोध्या बुला रहा है? बहुत देर के विचार–विमर्श के बाद उन्होंने जाने से पहले इसी बात का निश्चय होना जरूरी है।

किन्तु कुमार के मन की अग्नि का अनुमान लगाने में बाहुबली ने भूल की। उनके पास से आकर उसने बहुत अधिक नहीं सोचा–विचारा। वसन्ततिलका से मिल सकना अब उसके बस की बात नहीं रह गई थी। बाहुबली ने उसके लिए स्पष्ट रूप से वर्जित कर दिया था। उसने राजमहल से बाहर निकलकर अपने अंगरक्षक को बुलाया और प्रातःकाल ही पोदनपुर से अयोध्या चलने के लिए प्रबन्ध करने को कहा।

राजकुमारी वसन्ततिलका को रात–भर स्वपन आये, युद्ध के स्वपन, मधुरता के स्वपन, अयोध्या की चतुरंगिनी के स्वपन और कुमार विशालकीर्ति के स्वपन। किस प्रकार एक ही दिन में, एक दिन के एक ही प्रहर में इतनी घटनाएँ एकत्र होकर कैसी हलचल–सी उत्पन्न कर गई हैं, क्या कभी वह दिन आ सकेगा कि कुमार विशालकीर्ति उसके हो जायँ ? यदि नहीं आयगा, यदि पिताजी अपनी मान–मर्यादा को लिए ही बैठे रहे, तो क्या होगा ? क्या वह कुमार विशाल की याद मन में लिए किसी और की अंकशायिनी हो सकेगी ? नहीं, नहीं, क्षत्रिय कन्या केवल एक बार अपना पति चुनती है, और राजकुमारी अपने समस्त मन से अपना हृदय कुमार विशालकीर्ति को सौप चुकी है। किन्तु

जब तक अयोध्या का शासन हमारा शत्रु है, क्या कुमार विशालकीर्ति अपने इस एक क्षण के उन्माद को सँजोकर रख सकेंगे ? इस प्रश्न का उत्तर बिना कुमार से मिले, मिल पाना कठिन था, और कुमार तो स्वपन के अतिरिक्त मिलते ही नहीं, न आगे मिल सकेंगे। कितना विचित्र था वह द्वंद्व! कुमार ने वीरता की सीमा लाँघ ली थी। किस प्रकार उन्होंने बिना चोट खाए ही उसके पिता से जैसे शूरवीर से रक्षात्मक युद्ध किया था!

उस रात कुमारी वसन्ततिलका उन सजीले और डरावने दोंनो तरह के स्वपनों में खो गई।

प्रातःकाल कुमार विशालकीर्ति ने फिर बाहुबली के सामने उपस्थित होकर अयोध्या वापस लौटने की अनुमती माँगी। बाहुबली ने कुमार के चेहरे पर विषाद और कोप की रेखाएँ देखकर कहा "क्यों, इतनी जल्दी क्या है ? अयोध्या पोदनपुर से बहुत दूर तो नहीं है।"

कुमार ने अर्थपूर्ण दृष्टि से बाहुबली के मुख को देखते हुए कहा "इसका निर्णय तो अयोध्या में ही हो सकेगा, चाचाजी! महाभिषेक में आपकी प्रतीक्षा हो रही होगी, चलिये।"

"यदि बाहुबली के सम्बन्ध में कोई निर्णय होना ही है, तो वह अयोध्या में नहीं होगा, पोदनपुर में होगा। तुमने हमें जता दिया है कि अयोध्या में हमारी प्रतीक्षा नहीं की जा रही, जिन्हें भरत ने युद्ध में जीता है। जब भाई की पदवी से भैया भरत हमें बुलाएँगे, हम सिर के बल दौड़े आएँगें। जाना ही चाहते हो, तो तुम जाओ कुमार!"

अब कुमार विशालकीर्ति को और कुछ कहने को नहीं रह गया था। अब तक जो भी कुछ उसने कहा था अपने अधिकार की सीमा के बाहर होकर कहा था और बाहुबली ने उसे जिन अर्थो में, और सही अर्थों में लिया था, उसके परिणाम के लिए कुमार विशालकीर्ति स्वयं चिन्तित था।

जाते समय एक बार राजकुमारी वसन्ततिलका के दर्शन हो जाने की आशा थी, उस आशा से भी अधिक कामना थी। किन्तु इस पार्थिव संसार में दो प्रेमियों की आशाएँ, उनकी कामनाएँ उनकी इच्छाओं के अनुसार फलीभूत नहीं होती; कुमार की भी नहीं हुई।

भरत के कुमार ने अयोध्या के लिए प्रस्थान कर दिया। पोदनपुर के गढ़ द्वार पर पहुँचकर उसे याद आया कि आते समय उसका स्वागत किस ठाठबाट से किया गया था। अब उसकी समझ में उसका वास्तविक अर्थ आया। उसमें स्नेह उतना नहीं था, जितना अपने पूर्वस्थापित अतिथि को सुरक्षा देने की भावना थी। कुमार पोदनपुर में क्यों आ सकता है? अपने भागे हुए शत्रु को पकड़ने या अपने चाचा से स्नेह का आदान–प्रदान करने ? उसके आने का पहला ही अर्थ लगाया गया था। यह अनुभव करके उसके हृदय को कोई शान्ति अनुभव नहीं हुई।

22

कुमार विशालकीर्ति का सार्थ अयोध्या पहुँचा। अयोध्या की जनता ने अपने युवराज का स्वागत मुक्त हृदय से किया। उधर महाभिषेक की तैयारियाँ लगभग पूरी हो चुकी थीं। सहस्त्रों राजा लोग महाबली भरत को चक्रवर्ती घोषित करने के लिए आ चुके थे। उन्होंने अयोध्या की धूल मस्तक से लगाकर अपने को धन्य समझा था।

पोदनपुर में कुमार को लग रहा था, जैसे अकस्मात् वह कुछ छोटा हो गया था। यह वैभवपूर्ण समारोह देखकर उसका मन गर्व से फूल उठा। इसके बीच में केवल एक इच्छा का अभाव बार–बार उठकर हल्का–सा तीर चुभो देता था।

प्रस्तुत कार्यों से निवृत्त होते ही महाराज भरत ने पूछा, "बाहुबली नहीं आया! क्यों, क्यों नहीं आया बाहुबली ?"

"चाचाजी स्वतन्त्र राजा हैं। वह कैसे आ सकते थे ?" प्रश्न के उत्तर में कुमार ने कहा–

"बाहुबली में अब भी बचपना है।" महाराज भरत ने हँसते हुए कहा। फिर सहसा गम्भीर होते हुए उन्होंने पूछा "क्या ये उसी के शब्द हैं ?"

कुमार विशाल ने पिता की बात का उत्तर नहीं दिया। उसने उत्तर में फिर एक और बात प्रस्तुत की, "चाचाजी ने रतनपुर के भगोड़े राजा वज्रबाहु को अपने यहाँ शरण दी है।"

"शरण दी है!" विस्मय के भाव से भरत ने कहा। "रतनपुर के महाराज वज्रबाहु को बाहुबली ने शरण दी है ?"

"उन्होंने उसे पोदनपुर में लगभग अपने ही समान अधिकार दे रखे है।" कुमार ने कहा।

किन्तु अब की बार यदि कुमार भरत का कोप देखना चाहता था, तो उसे निराश होना पड़ा। भरत ने प्रसन्नता के भाव सें कहा "हाँ, हाँ, क्यों न हो, क्यों न हों ? वह भी तो तपस्वी ऋषभदेव का ही पुत्र है न। विशाल तुम्हें अपने चाचा से कुछ सीखना चाहिए।"

कुमार विशाल अप्रतिभ हो गया।

पास ही खड़े महामंत्री अब तक चुप थे। उन्होंने हाथ जोड़कर कुछ कहने के भाव से महाराज भरत की ओर देखा।

भरत ने कहा "हाँ, हाँ, कहिये न, महामंत्री। हमारे भाई के विरूद्ध जो भी कुछ कहना चाहेगा, हम उसकी बात सुनेंगे।"

आँखें नीची रखकर महामंत्री ने कहा, "अयोध्या के शत्रु का पोदनपुर में शरण लेना क्या आप उचित समझते हैं, देव ?"

"यही प्रश्न हम आपसे पूछते हैं, महामंत्री! यदि वज्रबाहु अयोध्या में हमारे द्वार पर ही शरण लेने आता, तो क्या हम उसे शरण न देते ?"

महामंत्री ने कहा– "तब वह दूसरी बात होती, देव! परन्तु किसी अन्य राजा को अपने यहाँ शरण देना आपके चक्रवर्ती पद के लिए चुनौती है।"

"अन्य राजा कौन ? बाहुबली का राज्य तो अपना ही राज्य है, महामंत्री!" भरत ने कहा।

अब कुमार ने फिर सिर उठाया, "किन्तु उन्होंने तो अपने आपको स्वतन्त्र समझ रखा है, पिताजी।"

पुनः महामंत्री ने कहा, "जब तक विधिवत् पोदनपुर अयोध्या का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करता, वह स्वतन्त्र ही कहा जायेगा, देव!"

"और इसका निश्चय दूत भेजकर किया जा सकता है!" कुमार ने सम्मति दी।

भरत इस धारा–प्रवाह समर्थन से घबरा गया। उसने तनिक तीव्र स्वर में कहा– "आखिर आप लोग चाहते क्या है ? आज हम बाहुबली से पूछे कि वह हमारे अधीन है या नहीं ? कल हम तुमसे पूछें कि तुम हमारे अधीन हो या नहीं? एक समय पोदनपुर हमने स्वयं अपने हाथों से विजय किया था। तबसे आज तक वह नाम–मात्र का राज्य हमसे किसी लड़ाई में नहीं हारा। हमने बाहुबली को वन में जाने से रोका था कि हम उसके बिना स्नेह–शून्य हो जाएँगे। पिताजी ने हमारा ही मन रखने को, हमें भविष्य से सुरक्षित रखने को, बाहुबली को अपने हाथों से पोदनपुर का राज्य दिया था। महामान्य पिताश्री की हुई उस व्यवस्था को आज हम शक्ति के मद में आकर अमान्य करें, यही तो चाहतें है न आप लोग ? तब आप लोग भरत से बहुत ज्यादा चाहते हैं। भरत में इतनी शक्ति कहाँ है ?"

इस समय महामंत्री के धैर्य, और जो कुछ वह समझते थे, उसे प्रस्तुत करने के लिए उनके साहस की परीक्षा थी। उन्होंने बिना हिचक अत्यन्त नम्र स्वर में निवेदन कियाः "राज–धर्म बड़ा ही कठोर होता है, देव! परम भट्टारक ने समस्त भूमंडल के राजाओं को अयोध्या के सिंहासन के सामने सिर झुकाने के लिए बाध्य किया है, तो क्या महाराज बाहुबली को आप केवल इसीलिए छोड़ देंगे कि वह श्रीमन् के भाई हैं। यदि राजनीति इस प्रकार सम्बन्धों पर तोली जाएगी, यदि सब राजाओं के सामने राज्य–संचालन का यही उदाहरण अयोध्या की ओर से रखा जाएगा, तो राजनीति लंगड़ी हो जाएगी, और इतने अमूल्य बलिदानों पर प्राप्त किया गया अयोध्या का गौरव पलक–झपकते ही छिन्न–भिन्न हो जाएगा।"

राज्य चक्रवर्ती भरत की आज्ञा से चलता था। आज का राजधर्म उसके प्रतिकूल चल रहा था। यह प्रतिकूलता की बाढ़ महाबली भरत की दृढ़ इच्छा–शक्ति को रौंद रही थी। यदि बाहुबली ने अयोध्या के दूत को खड़े–खड़े वापस लौटा दिया, तो अयोध्या में फिर रण के बाजे बजने लगेंगे। किसके ऊपर रणगान, बाहुबली के ऊपर ? भरत के भाई के ऊपर ? उस सहोदर के ऊपर, जिसे एक समय स्वयं भरत ने सांसारिक सुख–भोग,

सांसारिक स्नेह का मार्ग दिखाने के लिए वन–जाने से रोक लिया था ? आज पोदनपुर के द्वार पर जाकर भरत युद्ध का नाद करेगा, और बाहुबली को दिखाएगा कि देखो भरत तुम्हारे लिए सांसारिक स्नेह का कितना अच्छा और अनुठा साजसामान लाया है! कि भरत ने तुम्हारे लिए सांसारिक शून्यता सें जो सार था उसका सही–सही रूप संवार कर रख दिया है! तब बाहुबली, उद्दंड बाहुबली, स्वतन्त्रता का पुजारी बाहुबली अपने रक्त से भरत चक्रवर्ती के स्नेह पर मुहर लगा देगा। नहीं–नहीं, ऐसा नहीं होगा; और भरत चिल्ला उठाः

"महामंत्री, कुमार, हम इस समय एकान्त चाहते है। महाभिषेक की तैयारी पूर्ववत् चलती रहे।"

सिर झुकाकर महामंत्री ने सम्राट का अभिवादन किया।

उस दिन महारज भरत किसी भी राजकाज के काम में नहीं देखे गए। अपने एकान्त कक्ष में बैठे वह बाहुबली की बात सोचते रहे। यदि बाहुबली के पास दूत भेजा जाय, तो क्या बाहुबली भरत के राजसी–संवाद का स्वागत करेगा ? यदि वह भरत के स्नेह का सम्मान करता, तो क्या कुमार के साथ ही स्वयं भी यहाँ न आ जाता ?

कुमार विशालकीर्ति और महामंत्री के सामने जिस भरत ने सीना तानकर अपने भाई का पक्ष लिया था वही अब उसका दूसरा पक्ष भी सोचने लगा। यदि बाहुबली, अयोध्या आ ही जाता, तो क्या भरत उसे पकड़कर बलात् अपने सामने झुकने के लिए बाध्य करता ? क्या वह भरत को इतना नीच समझता है ? पहले भी बाहुबली ने सदा ही भरत की दिग्विजय की इच्छा का विरोध किया है। उसने अपने भाई के स्नेह का सम्मान नहीं किया, मात्र यही बात भरत के सामने आती रही। और ये भी भावनाएँ होती हैं, जो भाई–भाई के मन में एक–दूसरे की ओर से भ्रम, और उसके परिणाम में संघर्ष का सूत्रपात करती हैं।

संध्या समय भरत ने महामंत्री को बुलाया। उनके आ जाने पर भरत ने उससे कहा– "महामंत्री, हमने सोचा। ठीक है, हमें चक्रवर्ती होकर चक्रवर्ती की तरह ही व्यवहार करना चाहिए। बाहुबली के पास राजनीतिक अधीनता स्वीकार कराने के लिए राजदूत भेजा जाए।"

महामंत्री ने चक्रवर्ती के सम्मान में अपना सिर झुकाया। "देवाधिदेव ने ठीक ही सोचा। समय जो कहता है वही करना विज्ञजनों को उचित है।"

वह बाहर निकले तो कुमार विशालकीर्ति मिला। उसके मन में पिता के निर्णय के बारे में पहले से ही धुकड़–पुकड़ मच रही थी। उसने पूछा–"महामंत्री जी! पिताजी ने कोई उत्तर दिया?"

"अयोध्या की लाज बच गई, कुमार!" महामंत्री ने कहा, "पोदनपुर को राजदूत भेजा जा रहा है।"

उस समय कौन कह सकता था कि अयोध्या की लाज बच नहीं रही थी; अपितु उसे एक ऐसा दाग लग रहा था, जिसके छुटाने की कोई औषधि भरत के पास नहीं थी।

किन्तु कुमार विशालकीर्ति प्रसन्न–वदन लौट पड़ा। यही उसकी इच्छा थी। बाहुबली के अधीनता स्वीकार कर लेने से वज्रबाहु भरत का शरणागत समझा जाएगा। फिर भरत के कुमार को जमाता के रूप में देखने के लिए वह स्वयं ही नंगे पैरों दौड़ पड़ेगा।

कितना विकट होता है मनुष्य का व्यक्तिगत स्वार्थ!

एक अत्यन्त चतुर, विश्वासपात्र और अनुभवी व्यक्ति को राजदूत बनाकर पोदनपुर भेज दिया गया। महाराज भरत ने स्वयं एकान्त में बुलाकर आदेश दिए। उन आदेशों में बाहुबली के प्रति चक्रवर्ती के भाई की तरह सम्मान प्रकट करने के लिए ही उसे कहा गया था।

23

बाहुबली की राजसभा भी वीरों की राज सभा थी। शरीर को परिश्रम करके साधने वाले भटों की मूँछें दर्शनीय थी। वहाँ आभूषणों का ऐश्वर्य इतना नहीं था। द्वारपाल ने सूचना दी– "चक्रवर्ती महाराज भरत का राजदूत राजसभा में उपस्थित होने की आज्ञा चाहता है, महाराज!"

आज्ञा मिल गई। दूत उपस्थित हुआ। राजोचित सम्मान का प्रदर्शन करके उसने सिर झुकाकर निवेदन किया– "महाराज की जय।"

बाहुबली ने उत्तर में कहा– "महाराज भरत की जय! कहो चक्रवर्ती कुशल से तो हैं न ?"

"जहाँ महाराज बाहुबली की शुभकामना हो, वहाँ कुशल–मंगल ही है।" राजदूत ने चतुरतापूर्वक कहा। "परम भट्टारक, इक्ष्वाकुवंश चूड़ामणि, सम्राट् शिरोमणी, चक्रवर्ती महाराजाधिराज श्री भरतेश ने परम कल्याण के देने वाले आर्शीवाद से आपको स्मरण किया है।"

"हम इसे सहर्ष स्वीकार करते हैं।" बाहुबली बोले।

"महाभिषेक में अयोध्या न पहुँचने के कारण आपकी ओर से श्री भरतेश को बहुत दुःख हुआ है।"

"दुःख तो हमें भी बहुत है। किन्तु राजधर्म हमारे रास्ते में दीवार बनकर खड़ा हो गया है।"

"अपके बड़े भाई के चक्रवर्ती–राज्याभिषेक में भाग लेने से आपके राजधर्म में क्या बाधा आ सकती है, महाराज ? संसार में इक्ष्वाकु वंश की विजय पताका फहराने वाले प्रतापी भरत का भाई होने का गौरव केवल आपको ही प्राप्त है। यदि आप ही इस गौरव को ठुकरा देंगे, तो राजधर्म तो नष्ट होगा ही, कुलधर्म भी विलिन हो जाएगा, देव! अनेक देशों के राजे–महाराजे अयोध्या में पधारे हैं। वे सभी राह पर आँखें बिछाए आपके आगमन की प्रतिक्षा कर रहे है।"

बाहुबली मुस्कराए। उन्होंने कहा– "संसार उन्हें राजा समझ सकता है। वह अपने को राजा कह सकते हैं। किन्तु हम उन्हें राजा नहीं कहते। वे चक्रवर्ती के रथ के पहियों पर पिसकर चिपट गए राह के तिनके हैं, जिन्हें उनके पीछे–पीछे अयोध्या में पहुँचना ही था।"

"क्षमा कीजिए, महाराज! आपने इतने राजाओं का अपमान किया हैं। आप जैसे विवेकी राजा को इतना अभिमान शोभा नहीं देता।"

"राजदूत! बाहुबली ने तीव्र स्वर में कहा– "तुम अपनी मर्यादा से बाहर जा रहे हो ?"

"महाराज की जय" राजदूत ने नम्रता से अपनी मर्यादा स्वीकार की। "चक्रवर्ती के लिए श्रीमान का क्या उत्तर है ?"

"जाकर चक्रवर्ती से कहो कि बाहुबली भी महाराज ऋषभदेव का ही पुत्र है। छोटे भाई के मन में बड़े भाई के लिए श्रद्धा है, आदर और सम्मान सब कुछ है। भाई के नाते हम बड़े भाई के चरणों में सिर रखने के लिए तैयार हैं, किन्तु वही सिर अधिकार के सामने एक तिल भी नहीं झुकेगा।" बाहुबली ने कठोर पर्वत की नाई अपना निश्चय प्रकट किया।

"इससे बड़ी कटुता बढ़ेगी, महाराज! इसका परिणाम बुरा होगा। चक्रवर्ती यह कैसे सहन करेंगे कि और सब राजा उनकी वंदना करें और उनका अपना भाई उनकी आज्ञा न माने ? यदि इसका निर्णय युद्ध के द्वारा हुआ, तो संसार के इतिहास में एक ऐसी घटना घटेगी, जो कभी नहीं घटी।" राजदूत ने कहा।

बाहुबली हँसे। "उसका उत्तरदायित्व केवल भैया भरत के ऊपर होगा। हमें अपने छोटे–से राज्य से संतोष है, मगर उनकी तृष्णा संसार को जीतकर भी नहीं बुझी!"

बाहुबली का अंतिम निश्चय जानकर राजदूत ने उन्हें झुककर अभिवादन किया और वह राजसभा के बाहर प्रस्थान कर गया।

जिस चक्रवर्ती की जाँघों की नसें विश्व–विजय की यात्रा के बाद घोड़े की पीठ छोड़ कर भली प्रकार अभी सीधी भी नहीं हो पाई थीं, वह राजदूत के मुख से अपने छोटे भाई के दर्पपूर्ण अवज्ञा का वृतांत सुनकर रोष से काँप उठा। उसकी मुष्टिका के प्रहार से सम्मुख लगे दर्पण में कितनी ही दरारें पड़ गई, जिनके बीच में कोप से विकृत उसके मुख की भावभंगिमा कई गुनी विकृत होकर भोंक उठी। आज्ञादंड उठाकर उसने जोर से घण्टे पर प्रहार किया।

कई ओर से प्रतिहारियों ने निकलकर चक्रवर्ती की सेवा में अपने–अपने सिर झुका दिये– "आज्ञा दें, देव!"और भरत ने आज्ञा दी। "पोदनपुर पर आक्रमण की तैयारियाँ की जाएँ।"

क्षण मात्र में चक्रवर्ती भरत की यह आज्ञा पंख लगा कर फैल गई। निवृत्त हो गई अयोध्या की सेनाएँश फिर से प्रवृत्त हो गई। प्रशांत नगरी में फिर एकबार अपूर्व सनसनी–सी फैल गई।

किन्तु यह भरत का बाह्य रूप था। समय के थोड़े से प्रवाह के साथ ही उसके हृदय का दावानल धीरे–धीरे कूल छोड़ने लगा और एक प्रश्न अपना विराट् रूप धर कर उसके सामने आ खड़ा हुआ– "क्या यह उचित है ?"

यह प्रश्न अपने साथ अगली–पिछली स्मृतियों के बहुत से दृश्य समेट लाया। पिता के वैराग्य का समय साकार होकर आँखों के सामने नाचने लगा।

"इस असार संसार में क्या कुछ सीखने के योग्य भी है, पिताजी ? यदि है, तो उसे कौन अब तक सीख सका है ?" यह बाहुबली का प्रश्न था और इसका उत्तर दिया था भरत नेः

"नहीं–नहीं, बाहुबली! तुम नहीं जाओगे। यह न कहो यहाँ कुछ सीखने के लिए नहीं है। तनिक मन–की आँखें तो खोलो, तुम्हें स्नेह के, प्रेम के वे अगाध रास्ते मिलेंगे, जिनमें चलने के लिए बहुत कुछ सीखना जरूरी है, बहुत कुछ जानना जरूरी है।" और फिर वे दोनों एक–दूसरे के गले लिपट गये थे।

क्या बाहुबली पर आक्रमण करने के लिए ही भरत ने रोक लिया था ? कितना विषम व्यापार है कुछ और दृश्य भी भरत के सामने वास्तविकता के चलचित्रों की नाई घूमने लगे। वह छोटा–सा राजकुमार हो गया है। बाहुबली उससे भी छोटा होकर उसके खिलौने पर मचल उठा है। भरत सहर्ष उठाकर अपना खिलौना उसे दे रहा है। कितना अन्तर है उस देने में और इस लेने में। भरत मर्माहत हो उठा।

और चक्रवर्ती के हाथ ने फिर आज्ञा–दंड उठाकर घण्टे पर प्रहार किया। फिर प्रतिहारीगण उपस्थित हो गये, और भरत ने आज्ञा दीः "सेनापति को हमारी आज्ञा सुनाओ..."

"सेनापति स्वयं उपस्थित है, सम्राट्!" विशालबाहु सेनापति ने एक ओर से विनयपूर्वक कहा। "नायकों को सेनाएँ सुसज्जित करने का आदेश दे दिया गया है, देव! सेवक महाराज की दूसरी आज्ञा सुनने को उत्सुक है।"

अपने वैभव के दूत को सामने देखकर भरत की व्यावहारिक चेतना लौट आई। उसी के अनुरूप चक्रवर्ती की अवज्ञासूचक बाहुबली के शब्द उसके मानस पटलपर टेढ़े–मेढ़े होकर उछल–कूद मचाने लगे। सीधे होकर भरत ने सेनापति से कहा– "हम महामंत्री की उपस्थिति चाहते हैं।"

"जो आज्ञा, देव!" कहकर सेनापति बाहर निकले। लम्बी राह से होते हुए कुछ दूर चलते ही स्वयं महामंत्री को अपनी ओर आते देखकर सेनापति रूक गये। भेंट होते ही सेनापति ने सम्राट् की आज्ञा सुनाते हुए कहा– "सम्राट् ने आपको याद किया है।"

"मैं उसी ओर जा रहा हूँ!" महामंत्री ने कहा।

सेनापति साथ–साथ उनके पीछे–पीछे चले। "महाराज कुछ बेचैन नजर आते हैं। लगता है, जैसे रात–भर नींद न आई हो!"

"सम्राट् बेचैन न होते, तभी आश्चर्य होता, सेनापति! आज राजधर्म और कुलधर्म में दुर्निवार संघर्ष का अवसर है। इतने दिवंगत वीरों का लहू विश्व की विजय यात्रा का परिश्रम, चक्रवर्ती की प्रतिष्ठा सब मिलकर राजधर्म का साथ दे रहे हैं। दूसरी ओर स्नेह, वात्सलय और कुल–परम्परा, कुलधर्म की पीठ पर हैं। कौन जीतता हे इसी पर चक्रवर्ती का चैन अवलंबित है।"

कक्ष के द्वार पर आकर महामंत्री तो आगे गये और सेनापति रूक गये। सेनापति को महामंत्री का स्वर सुनाई दिया। "सम्राट की जय!"

"महामंत्री," वह सम्राट् का स्वर था– "बाहुबली के उत्तर ने हमें विचलित कर दिया है।"

"यह सम्राट् के हृदय की दृढ़ता का समय है।" महामंत्री कह रहे थे।

"कैसी विड़बना है! केवल भूमि के एक टुकड़े के लिए हमें अपने एक सबसे प्रिय के विरूद्ध शस्त्र उठाना पड़ेगा!" सम्राट् का स्वर शोकपूर्ण था।

"कर्त्तव्य कभी काम की नाप–तोल नहीं करता, श्रीमन्। यह भूमि का एक टुकड़ा नहीं है, जो श्रीमन् को ललकार रहा है। यह छोटे भाई की उद्दंडता

और उसका विद्रोह है, जिसने सम्राट की सत्ता को चुनौती दी है। इस चुनौती को स्वीकार करने में ही चक्रवर्ती के मान की परीक्षा है।"

"हमने खूब विचार किया है, महामंत्री!" अब भरत का स्वर विरक्ति से भर गया था। "हमसे बाहुबली के ऊपर खड्ग नहीं उठ सकेगा। हमें ऐसा चक्रवर्ती पद नहीं चाहिये। हमें प्रसन्नता होगी यदि यह पद बाहुबली को दे दिया जाए।"

"चक्रवर्ती का पद दिया नहीं जाता, श्रीमान! प्राप्त किया जाता है। आज संसार जिसके खड्ग का लोहा मानता है, वह परम भट्टारक श्री भरतेश है, न कि पोदनपुर के महाराज बाहुबली।" महामंत्री ने उलटी हुई बाजी को सीधा करने की चेष्टा करते हुए कहा।

"बाहुबली का स्नेह हमें रोकता है।" भरत ने अपनी दुःख की गाँठ खोल दी।

"जहाँ अहंकार है, वहाँ स्नेह नहीं रह सकता, श्रीमन्! आखों पर पड़ा परदा स्नेह और प्रेम को साफ–साफ नहीं देखने देता। महाराज की आँखों पर अहंकार का परदा पड़ा है। जब वह हटेगा, तो वह सम्राट् के निःकलुष–स्नेह को पहचानेंगे, और प्रेम का यह बन्धन और भी कस जायगा।" महामंत्री ने कहा।

भरत टूटे हुए दर्पण के सामने चुपचाप खड़े हो गये। सम्राट को एकांत में अपने शब्दों पर मनन करने के लिए छोड़ने की इच्छा से महामंत्री ने सिर झुकाकर जाने की आज्ञा माँगी।

भरत ने बिना बोले ही केवल हाथ के इशारे से उन्हें जाने की आज्ञा दे दी।

महामंत्री बाहर निकले। साथ में सेनापति भी हो लिए। महामंत्री का मुख असाधारण रूप से गंभीर था।

सेनापति ने कहा– " सम्राट् आज पहली बार अनिश्चय के भँवर में फँसे है। कौन विश्वास कर सकता है कि कुशल से कुशल सेनापति को रणकौशल

सिखाने वाले भरत यही हैं ? तुरंत निश्चय और तुरन्त उसका पालन जिस सम्राट् का स्वभाव हो, वह आज मानो एक ऐसी धारा के बीच में पड़ गये हैं, जहाँ न तो वह वापस जाने की सोच पाते हैं और न पार जाने की।"

"आप ठीक कहते हैं, सेनापति, शायद प्रत्येक बड़े आदमी के जीवन में एक–न–एक बार ऐसा अवसर जरूर आता है।"

जब इस युद्ध की तैयारियाँ यथानियम चल रही थीं, भरत का उद्विग्नमन शांति की खोज कर रहा था, किन्तु शांति उन के मन से कोसों दूर भाग चुकी थी।

युद्ध की घोषणा हो गई। दोनों ओर की सेनाएँ रणस्थल की ओर कूच करने लगीं। देशदेशांतरों में यह समाचार तीखे पवन की तरह सनसनाता हुआ फैल गया।

24

बाहुबली के स्वयंवर में न पहुँचने से वैजयन्ती की राजनन्दिनी की आस्था प्रेम की वास्तविकता से विरत हो गई थी। उसके हृदय मन्दिर में खोजे भी कहीं बाहुबली की मूर्ति का स्पर्श तक नहीं होता था। फिर भी एक निराकार वेदना बराबर उसके अन्तर्मन में व्याप्त रहती थी। गम्भीरता ने उसके मुँह पर अपना स्थाईवास बना लिया था।

वैजयन्ती–नरेश अपनी एकमात्र सन्तान के मनोदुख को देख–देख कर करूणा से विगलित हुए जाते थे। नियति से संतप्त, दुखों में ही पली इस मातृहीन राजकन्या के अभागे भाग में और क्या–क्या बदा है, यह जाने बिना उनके हृदय को चैन नहीं मिल रहा था।

जो आने वाला है, जो होने वाला हैं, उसे कौन जान सकता है ? बहुत उछल–कूद कर यदि कोई कुछ जान पाता है, तो वह इतना थोड़ा, इतना अपर्याप्त होता है कि पुरानी वेदना के स्थान पर, एक नई वेदना से साक्षात्कार हो जाता है। अन्तर इतना होता है कि इस नए दुःख में मनुष्य अपनी मूर्खता और आगत को जानने की उद्दंडता की बात भूल जाता है। वैजयन्ती–नरेश

अपनी चिन्ता से स्वयं ही फुँके जा रहे थे। उन्हें इस छोटी–सी अग्नि के स्थान पर शीघ्र ही दावानल से भेंट करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

एक दिन वैजयन्ती में एक सुप्रसिद्ध ज्योतिषी का आगमन हुआ। उस ज्योतिषी की खासी धूम–धाम थी। कई बार मंत्री ने स्वयं उसकी प्रशंसा की थी। ज्यों–ज्यों उस ज्योंतिषी का निवास वैजयन्ती में लम्बा होता चला गया, वैजयन्ती–नरेश के मन में अपनी दुखी बेटी के भाग्य को जानने की इच्छा प्रबल होती चली गई।

अन्त में एक अनुकूल अवसर देखकर उस ज्योतिषी की पुकार राजमहलों से हो ही गई। उसका यथोचित आदर–सत्कार करने के बाद वैजयन्ती–नरेश ने राजकुमारी की टीप उसके सामने खोलकर रख दी। "बताइए, राजनन्दिनी का भाग्य रेखाओं में क्या है ?"

ज्योतिषी ने राजकुमारी की हथेली देखी, टीप से उसका मिलान किया, और कितनी ही देर तक वह ध्यानावस्थित हुआ अदृश्य को टटोलता रहा। फिर उसने सिर उठाकर कहा– "महाराज! क्या आप सुनने के लिए अपने हृदय को पर्याप्त बलवान समझते हैं ? भाग्य में यदि अच्छाई होती है, तो बुराई भी होती है। जो व्यक्ति जीवन के साधारण सुख–दुःख से घबराकर भाग्य को उसके घटने से पहले ही जानने का लोभ करता है, वह अन्धेरे में टटोलता है, और अन्धेरे में फूल हाथ आते हैं, तो काँटे भी।"

राजकुमारी नन्दिनी ज्योतिषी को आर्त्त नेत्रों से निरखती रह गई। और क्या उसके भाग्य में बंधा है, जो अभी शेष रह गया है ? किन्तु भोली राजनन्दिनी क्या जानती थी कि मनुष्य दुःख की प्रत्येक सीढ़ी पर सीढ़ीयों पर यही सोचता है कि यह उसके दुःख की पराकाष्ठा है, जबकि वास्तव में वह उसके दुःखों का आरम्भ ही होता है।

महाराज पद्मसेन ने गम्भीरता से आकाश की ओर देखा, और अनन्त को सिर झुकाकर स्वीकार करते हुए कहा– "इस काँटे को चुभोने के लिए हमने अपने हृदय को बलवान बना लिया है, ज्योतिषीजी! आप अब निःशंक होकर कहिए कि हमारी एकमात्र संतान, हमारी आँखें की पुतली पर और क्या बीतने वाला है ?"

फिर उन्होंने राजकुमारी को लक्ष्य करके कहा– "जाओ, बेटी! हम नहीं चाहते कि तुम्हारे नन्हें से हृदय पर इस वज्रघात की ठेस तक लगे।"

राजकुमारी लज्जा, वेदना और क्षोभ की प्रतिमूर्ति बनी बैठी थी। पिताजी की बात सुनकर उसने दृढ़ता से कहा– "पिताजी यह कितनी विडम्बना होगी कि जिसके सिर पर वज्र गिरने वाला है, उसे ही पता न चले ? अचानक टूट पड़ने वाली विपत्ति से समय लम्बा होकर संकुचित अवश्य होता है, किन्तु उस संकोच में कितना भारीपन होता है, पिताजी! मुझे भी अपने भाग्य की रेखाओं को जान लेने दीजिए, ताकि मैं उसके घटने की प्रतीक्षा कर सकूँ, उसके लिए अपने को तैयार कर सकूँ।"

पुत्री की अनुनयभरी प्रार्थना से वैजयन्ती–नरेश विचलित हो गये। उन्होंने कहा– "बेटी! शोक से जानो मनुष्य में यदि उत्सुकता न होती, तो वह शायद जानवरों से आगे न बढ़ पाता। बताइए, ज्योतिषी महाराज! अब आप बिल्कुल निःशंक होकर बताइए।"

कुछ ज्योतिष की सुलभ गणना फिर से करने के बाद ज्योतिषी पहले अपने आप निश्चिन्त होने के बाद बोला– "महाराज, यह नहीं कह रहा हूँ, सम्मानित राजकुमारी की टीप कह रही हैं, जिसमें मंगल के गृह में राहू ने चन्द्रमा पर आक्रमण किया है। इसका अर्थ है, महाराज! कि राजकुमारी जी के भाग्य में पति–सुख नहीं हैं।"

'ओह!' महाराज पद्मसेन के मुँह से निकला और वह धड़ाम से पीछे की ओर लुढ़क गये। ज्योतिषी हड़बड़ाकर उठा और उसने महाराज को सँभालने की चेष्टा की। राजकुमारी चित्रलिखित की भाँति बैठी–की–बैठी रह गई। वह यह भी भूल गई कि उसका पहला कर्तव्य इस समय अपने दुःख को तिलांजली देकर महाराज की रक्षा के लिए सेवकों को पुकारना था।

कुछ क्षणों तक ज्योतिषी राजकुमारी की जीवित मूर्ति को बार–बार सिर उठाकर देखते हुए सोचता रहा कि वह टोके गया नहीं। फिर कुछ प्रतिक्षा करने के बाद उसने हौले से साहस करके पुकारा–"राजकुमारी जी।"

जैसे नींद उचट गई हो, राजकुमारी ने चौंककर परिस्थिति को लक्ष्य किया, और महाराज की दशा देखकर वह झपटकर सेवकों को बुलाने के लिए द्वार से बाहर चली गई।

कुछ समय बाद ज्योतिषी जी चले गए। सारा राजमहल एक प्रकार की अपूर्व चुप्पी से आक्रांत हो गया। महाराज पद्मसेन पर तो मानों साक्षात् वज्रपात ही हुआ था। जब तक राजकुमारी उनकी सेवा में रही उनके मन में अपने पिता के स्वास्थ की चिन्ता जमी रही। जब वह अपने विश्राम कक्ष में सारे–दुःखों को सुलाकर स्वयं भी सो गए, तो राजकुमारी के मन का चुभा हुआ काँटा भयानक टीस देने लगा। ज्योतिषी के वचनों ने जैसे उसके हृदय में गदा की चोट दी थी। ज्योतिषी ने तो भविष्य का कटु पर सत्य वृत्तान्त मात्र कहा था। किन्तु अपने मन की टीस की पहचान स्वयं राजनन्दिनी ही न कर सकी। क्या उसने स्वयं ही निश्चय नहीं किया था कि वह किसी को अपने हृदय का स्वामी नहीं बनाएगी, आमरण अपने पिताजी की सेवा करेगी ? फिर आज जब उसे यह पता चल गया कि उसके भाग्य में पतिसुख नहीं है, तो क्यों उसके मुखका रंग उड़ा जा रहा है ? ज्योतिषी ने तो जैसे उतना ही कहा है जितना उसके स्वयं के मन ने आज बहुत पहले से निश्चय कर रखा है। फिर स्वयं अपने निश्चय का परिणाम दूसरे के मुख से सुनकर ही उसने उस चोट का अनुभव किया ? इस प्रकार संत्रस्त होकर राजनन्दिनी अपने मन का विश्लेषण करने बैठी।

मन की अंतर्तम वेदना ने समस्त संचित रहस्य पुस्तक के पृष्ठों की भाँति खोलकर रखना आरम्भ कर दिया। उस पुस्तक में लिखे अक्षरों ने मानों थिरक–थिरक कर उसका परिहास करना शुरू कर दिया। राजकुमारी इस परिहास से घबरा कर मन–ही–मन माजरा जानने के लिए स्वयं अपने मन का कोना–कोना ढूँढ़ने लगी। फिर जैसे मन के कक्ष के बीच में खड़ी होकर उसने दृष्टि पसार कर देखा, तो बादलों के हट जाने पर सूर्य के प्रकाशमान होने की तरह प्रकट हुआ कि मन की जिस विद्रोही भावना को वह विरक्ति समझे बैठी थी, वह अनुराग की पराकाष्ठा का ही एक पृष्ठ–रूप था, जिसने नखरा करके अपना मुँह उसके अन्तर की हलचलों से विमुख कर लिया था। तभी तो एक अनिवार्य त्रास अपने पहले रूप से भी तीव्र होकर बराबर उसके मन को कचोटता आ रहा था। जो बाहुबली उसके हृदय मन्दिर में खोजे भी नहीं मिल रहे थे, लगा कि वे तो निराकार होकर उसके हृदय की प्रत्येक दिशा, प्रत्येक कण में समाये हुए थे। कितनी असाधारण आँख मिचौनी थी यह! कितनी बड़ी छलना थी।

उस घटना से अगले दिन ही यह दुःसमाचार वैजयन्ती पहुँच गया कि चक्रवर्ती भरत और पोदनपुर नरेश बाहुबली के बीच युद्ध की विधिवत घोषणा हो गई है। उसी दिन चक्रवर्ती भरत की ओर से वैजयन्ती–नरेश के पास इस युद्ध में सहायता देने का निमंत्रण आया।

यह सब सुनकर पहले तो राजनन्दिनी को सहसा विश्वास नहीं हुआ। फिर जैसे कुहरा साफ हो गया। उस समाचार और आज्ञा के अर्थ और गुरूता उसके सम्मुख स्पष्ट हो उठे।

युद्ध सदा से ही सर्वनाश के अर्थ लेकर आया है। किन्तु उस सर्वनाश से भी कभी–कभी दोनों पक्षों का जीवन फूट निकलता है। लेकिन इस युद्ध में तो एक का सर्वनाश नहीं ही है, और जिस पक्ष का सर्वनाश इस प्रकार भविष्य के अमिट लेख की तरह दिखाई दे रहा है, वह बाहुबली का पक्ष है। 'राजकुमारी के भाग्य में पति–सुख नहीं है!' ज्योतिषी की यह भविष्यवाणी अपने नग्न स्वर से बार–बार वायुमंडल में कोंधने लगी। क्या उस युद्ध में बाहुबली का अंत हो जाएगा ? यह प्रश्न बार–बार राजनन्दिनी के मस्तिष्क को आक्रांत करने लगा।

वैजयन्ती की सेनाओं को युद्ध के लिए तैयार होने का निमंत्रण दिया जा चुका था। राजकुमारी के हृदय को सुन कर भारी ठेस लगी। अपने वृद्ध पिता के पास पहुँच कर उसने कहा–"पिताजी! एक दिन वह हमारी सहायता के लिए आये थे। आज हमारी सेनाएँ क्या उन्हीं के विरूद्ध लड़ेगी ?"

वैजयन्ती–नरेश यह सुनकर आश्चर्य से भर गये। कल जो लड़की बाहुबली की ओर से उदासीन हो गई थी, आज किस प्रकार वह उन्हीं के पक्षपात के लिए कटिबद्ध हो कर आई है। उसने पहले प्रेम किया, फिर उसे ठुकराया और आज वह फिर उसके होंठों पर बोल रहा है। कितना अद्‌भुत और अगम है नारी का मन!

वैजयन्ती–नरेश ने उत्तर दिया– "नहीं , बेटी! हम चक्रवर्ती भरत से वचनबद्ध है। जब भरी सभा में हमारी आन और मान कच्चे धागे से लटक रहे थे, चक्रवर्ती भरत ने ही हमें उबारा था और जब भरत बाहुबली का सहोदर हो कर भी उसके विरूद्ध शस्त्र उठाने के लिए तैयार है, तो हम किस गिनती में है ? यह राजनीति है, और बाहुबली इस राजनीति को समझकर हमें हृदय से क्षमा कर देंगे, हमें इसका विश्वास है।"

राजकुमारी पिता का यह उत्तर सुनकर सन्न रह गई! अब कोई आशा नहीं रह गई थी। उसके हृदय का बाँध टूटकर उसकी आँखों की राह बह निकला। गीले शब्दों से वह बोल उठी–"भाग्य में जो होना है, वही दिखाई दे रहा है, पिताजी!"

वैजयन्ती–नरेश को यह सुनते ही कल के ज्योतिषी के वचन याद आ गये और वह सिर पकड़कर बैठ गये। उनका जख्म फिर ताजा हो गया था। कुछ देर तक दोनों ओर मौन छाया रहा। इस मौन में भूत और भविष्य के कितने ही चल–चित्र आये और चले गये। अन्त में राजकुमारी ने अपने मन को दृढ़ करके अनुनय के स्वर में कहा–"मैं उनसे एक बार अन्तिम समय में भेंट करना चाहती हूँ, पिताजी!"

वैजयन्ती–नरेश का विस्मय बढ़ता ही जा रहा था। "अब राख को कुरेदने से कोई लाभ नहीं है, बेटी! बाहुबली का चक्रवर्ती से युद्ध करना आत्महत्या के बराबर है। विनाश का साथ देकर तुम क्यों विनाश के गढ़े में गिरना चाहती हो ?"

पिता की बात सुनकर राजकुमारी ने आहत स्वर में कहा, "जब वहाँ विनाश हो जायेगा, पिताजी तो यहाँ भी कुछ नहीं रह जायेगा।" और आँखों को आंचल से ढ़ाक कर वह दीवार में मुँह छिपाकर रोने लगी।

वैजयन्ती–नरेश अपनी पुत्री के दाह को भली प्रकार नहीं समझ पा रहे थे। न ही वह उस शुरू की गहराई का अनुमान लगा सके थे, जो उसके मन में अचानक ही फिर से हरी हो गई थी। उन्होंने उठ कर बेटी के कंधे पर हाथ रखा। "अपने बूढ़े बाप से रूठ गई, बेटी ?"

राजनन्दिनी ने दीवार का सहारा छोड़ दिया और पिता के स्नेहपूर्ण स्कंध से लग कर रोने लगी। उसके अन्तर का रूदन मानों आज थमने में ही नहीं आ रहा था।

महाराज ने पुत्री के सिर पर हाथ रखते हुए कहा– "तू जिसको इतना स्नेह करती है, भला वह भी तुझे इतना ही स्नेह करता है ? यदि करता, तो क्या सकल सभा के सामने हमें इस प्रकार हास्यास्पद बनना पड़ता ?"

रूंआंसे स्वर में ही राजनन्दिनी ने पिता की बात का उत्तर दिया– "मैं तो अपना ही मन जानती हूँ, पिताजी! मुझे केवल अपने ही कर्तव्य का भान है। वह करें या न करें यह उनका भान है।"

यह अनुराग की पराकाष्ठा थी। वैजयन्ती–नरेश ने उसकी पीठ पर थपकी देकर उसे दिलासा दीया। "अच्छी बात है। तुम हमारे साथ ही पोदनपुर की ओर चलो। महाराज बाहुबली को इस विनाशकारी युद्ध से रोकने की चेष्टा करो। तुम्हारे सच्चे स्नेह के प्रताप से तुम्हारी इस यात्रा का उद्देश्य सफल हो, यही तुम्हें तुम्हारे इस बूढ़े पिता का आशीर्वाद है।"

राजनन्दिनी की गीली आँखें प्रकाश में चमक उठी।

25

दूसरे दिन वैजयन्ती की सेनाओं ने वैजयन्ती से कूच बोल दिया, और राजनन्दिनी के मन में विरोधी भावनाओं का अन्तर्द्वन्द्व व प्रीतम से मिलने का उत्साह लिए हुए पिता के संग चली।

यात्रा निर्विघ्न पूरी हुई। वह दोराहा आ गया, जहाँ भरत और बाहुबली की सेनाओं के ठिकानों की ओर दो अलग–अलग रास्ते जाते थे। एक रथ राजकुमारी के लिए अलग कर दिया गया। पिता ने बेटी के माथे को चूमा– "वैजयन्ती के मान की सदा रक्षा करना, बेटी।"

सहज नेत्रों से पिता को देखती हुई राजनन्दिनी ने पिता को प्रणाम किया, और अपने लिए नियत रथ के पृष्ठ भाग में जा बैठी। साथ ही रथ तीव्र गति से अपना मार्ग तय करने लगा। वैजयन्ती की सेनाएँ एक ओर जा रही थी। उससे दूसरी ओर सुदूर पर राजनन्दिनी का रथ अविराम गति से बढ़ता जा रहा था। बूढ़े वैजयन्ती–नरेश एक ही स्थान पर स्थिर हो कर उस रथ को आँखों से ओझल होता देख रहे थे।

इसके बाद एक ओर ऐसी घटना घटी, जिसने सारी घटनाओं का प्रवाह उनके निश्चित मार्ग से खिसका दिया। रथ अपनी गति पर आरूढ़ था, तभी एक ओर से कुछ अन्य अश्वों की टापों की ध्वनि राजनन्दिनी को सुनाई दी। राजकुमारी के अंगरक्षक भी चौकन्ने होकर इधर–उधर उचक–उचक कर देखने लगे। आने वाले अश्वारोही और निकट आ गये और अब उनकी आकृतियाँ और भी स्पष्ट हो गई।

राजनन्दिनी ने किंचित भय और विस्मय से देखा कि उन अश्वारोहियों में सबसे आगे महाराज वज्रबाहु थे, जो बाहुबली की सहायता के लिए कुछ मित्र–राजाओं की सहायता की याचना करने के लिए गये थे, किन्तु असफल होकर लौट रहे थे।

दूर से ही उन्हें देखकर राजकुमारी का रथ ठिठक गया। वज्रबाहु ने भी राजनन्दिनी को देखा और उनका मन कौतूहल से भर उठा। कहाँ जा रही है राजनन्दिनी इन गिने अंगरक्षकों के साथ ? वैजयन्ती की इस शोभा का आज यह कैसा म्लान–सा रूप दिखाई पड़ रहा है। चेहरे की कोमलता का स्थान रूखेपन ने ले लिया है, मुख पर श्री नहीं रह गई है, और सम्पूर्ण भावभंगिमा कितनी निराशा–सी लगती है। कुछ अतीत के दृश्य वज्रबाहु की नजरों के आगे फिर गये, जिन पर इस बीच की उथल–पुथल ने एक प्रगाढ़ आवरण डाल दिया था।

एक क्षण वज्रबाहु ने सोचा और इतनी ही देर में उनका अचेतन मन अपने पिछले कृत्यों का विश्लेषण कर गया। किस प्रकार अनधिकारपूर्वक उन्होंने वैजयन्ती पर आक्रमण किया था। किस प्रकार उन्होंने बाहुबली और राजनन्दिनी के पारस्परिक प्रेम में स्वार्थवश विघ्न डाला था और इस प्रकार दोनों के दयनीय जीवन को एक दूसरे से दूर भटका दिया था। स्वयं उनका जीवनी किस कारण से स्थिर नहीं रहा। इन सबकी तुलना उनके कारण हुई और होने वाले भीषण विस्फोटों से एक विराट दुःख उनके मन पर छा गया। आज वह राजनन्दिनी से हजार बार क्षमा मांगे और वह एक बार भी उनकी ओर आँख उठाकर न देखे, तो भी उन कृत्यों का पश्चाताप नहीं हो सकता।

वज्रबाहु ने रथ रोकने के लिए कहा। राजनन्दिनी ने सशंक दृष्टि से उनकी ओर देखा। उसके अंगरक्षाके ने अपने–अपने शस्त्र सँभाल लिए। रथ पूर्ण रूप से रूक गया।

वज्रबाहु निकट आ गये। "कहाँ जा रही हो, राजनन्दिनी ? वैजयन्ती से।" राजकुमारी ने अविश्वास से उनकी ओर देखते हुए कहा। "किधर ? बाहुबली की ओर ?" वज्रबाहु ने फिर पूछा

"हाँ!" राजकुमारी ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

"चलो, हम भी साथी हैं।" वज्रबाहु ने कहा।

राजकुमारी ने तीव्र दृष्टि वज्रबाहु के मुख पर डाली। वहाँ कोई दुष्टता का भाव परिलक्षित नहीं हो रहा था। उसका रथ आगे बढ़ा। वज्रबाहु और उनके साथी रथ के दोंनो ओर चलने लगे।

किन्तु राजनन्दिनी ने रथ रूकवा दिया। वह वज्रबाहु से तीव्र स्वर में बोली– "क्या कुछ और उत्पात बाकी रह गया है ?"

"नहीं देवी!" वज्रबाहु ने कहा। "ये हाथ इतना उत्पात मचा चुके हैं कि अभी उन्हीं के परिणाम से निपटना बाकी है।"

राजनन्दिनी आश्चर्य से भर उठी। आज पहली बार उसने इस प्रकार के नम्र–विचार वज्रबाहु के सम्बन्ध में उन्हीं के मुख से सुने थे। उसने बिना कुछ अधिक विचार किये हुए पूछा– "फिर इस प्रकार साथ–साथ क्यों चल रहें हो ?

"हमें भी वहीं जाना है, जहाँ तुम्हें जाना है, राजनन्दिनी! बाहुबली हमारे मित्र है।" वज्रबाहु ने कहा।

"वह तो पहले भी मित्र ही थे।" राजकुमारी ने अपनी शंका को राह देते हुए कहा।

वज्रबाहु हँस पड़े। "अब मित्रता कुछ गहरी हो गई है, राजकुमारी! चक्रवर्ती से युद्ध करके हम दोंनो ने एक साथ स्वर्ग जाने का निश्चय किया है।"

राजनन्दिनी ने कानों पर हाथ रख लिए। "नहीं, नहीं, महाराज वज्रबाहु नहीं, ऐसा नहीं कहिए। यह अपशकुन है।"

उसने अब निंश्चित होकर सारथी को इंगित किया और सब लोग साथ–साथ ही द्रुत गति से गन्तव्य स्थान की ओर अग्रसर हो चले। धीरे–धीरे अंशुमाली अस्ताचल की ओर जाने लगे। संध्या हो गई। बाहुबली का कटक अभी दूर था। एक उपयुक्त स्थान पर देखकर अश्वाराहियों और रथारोहियों ने अपने–अपने डेरे तान लिये, और सुबह तक कें लिए पड़ाव पड़ गया।

इस अवसर पर महाराज वज्रबाहु ने राजनन्दिनी से अपने कलंकित जीवन का पूर्ण अवगुंठन खोल दिया। किस प्रकार उन्होंने बाहुबली की भर्त्सना की थी, उनसे स्वयंवर में न आने का वचन लिया था, और स्वयं किस प्रकार भरत से पराजित होकर बाहुबली के शरणागत हुए थे, सब–कुछ राजनन्दिनी के सामने उन्होंने कह दिया। आज जब उन्हीं के कारण बाहुबली अपने पिता–तुल्य भाई और विश्व–विजेता शासक से टक्कर लेने की हद तक आ गये थे, वज्रबाहु अपने पास प्रायश्चित के साधनों का निपट अभाव पा रहा था। यह सब सुनाकर उन्होंने राजनन्दिनी से अत्यन्त विनीत शब्दों में क्षमा माँगी।

नारी के लिए सतीत्व के अतिरिक्त सभी कुछ देना सहज है। राजनन्दिनी ने हृदय को वज्रबाहु की ओर से बिल्कुल निर्मल कर लिया। बाहुबली की महानता का पूरा इतिहास उसके सामने खुलकर मानों स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया और उन्हें अपना देवता मानकर पुजारिन की तरह अलक्ष्य ही नमस्कार किया।

इसी प्रकार सुबह हो गई और छोटा–सा कारवाँ फिर चलने की तैयारी करने लगा, कि सहसा उस पर विपत्ति के बादल लहरा उठे। यह भरत की गश्ती सेना थी। अचानक ही उनके सैनिकों ने इन सब लोंगो को ललकारा और एक छोटे–से घमासान युद्ध के बाद महाराज वज्रबाहु और राजनन्दिनी साथ–साथ बंदी हो गये। भरत के सैनिक उन्हें अपने साथ भरत के कटक में ही ले आये। इतने दिनों के बाद वज्रबाहु आज अपना सब–कुछ बचाकर भी सभी–कुछ लुटा बैठे थे, और राजनन्दिनी अपने प्रिय के पास न पहुँचकर फिर वहीं पहुँच गई, जहाँ उसके पिता के अब तक पहुँच जाने की सम्भावना थी। यह था नियति का चक्र।

26

चक्रवर्ती भरत उस समय अपने शिविर में राजकुमार विशालकीर्ति के साथ किसी विचार–विमर्श में संलग्न थे। प्रतिहारी ने भीतर प्रवेश पाकर महाराज भरत को वज्रबाहु व उनके साथ उनके परिवार की एक महिला के पकड़े जाने का समाचार दिया।

चक्रवर्ती ने विशालकीर्ति की ओर देखा। "वज्रबाहु, रतनपुर का भागा हुआ राजा है ? उसे पकड़ने से क्या लाभ ?"

"किन्तु देव!" विशालकीर्ति ने निवेदन किया, "इस भागे हुए राजा ने युद्ध से भी अधिक उत्पात मचाया है। इसने ही चाचाजी को आप से युद्ध करने के लिए भड़काया है। ऐसा व्यक्ति स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं है।"

"विशाल! हमें महाराज वज्रबाहु से कोई व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। युद्ध में हारकर भाग जाना बहुत बड़ा अपमान है। जो व्यक्ति इस अपमान की चादर ओढ़कर अपने प्राण बचाता है, वह स्त्री और बच्चों की तरह ही अबध्य है"

महामंत्री ने अपनी सम्मति दीः "युद्ध नीति के अनुसार वज्रबाहु को नहीं छोड़ना चाहिए, देव! महाराज बाहुबली की ओर अन्य कोई राजा नहीं है। यदि वज्रबाहु भी न रहेगा, तो बहुत संभव है कि वह अपनी निर्बलता को अनुभव करके, बिना युद्ध किये ही श्रीमन् की अधीनता स्वीकार कर लें।"

भरत ने कहा– "नहीं, महामंत्री! हमारी नीति भागे हुए राजा को बन्दी करने की अनुमति नहीं देती। जो राजा युद्ध से भाग जाता है, वह जीतेजी ही मर जाता है और वीरों की सीमा से बाहर हो जाता है।"

विशाल ने अपनी बात दूसरे ढ़ग से कही। "पिताजी! वीर मनुष्यों को क्रोध दिलाने के लिए एक छोटा–सा कारण बहुत होता है। जब तक वज्रबाहु चाचाजी के पास रहेंगे, वह युद्ध से विरत नहीं हो सकेंगे। जब मैं पोदनपुर गया था, तो अयोध्या के प्रति उनके मन में कोई द्वेष नहीं था।"

भरत हँस पड़ा। "किन्तु, जब तुम वहाँ से आये तो द्वेष का बीज बोया जा चुका था, यही कहना चाहते हो न ? तब महाराज वज्रबाहु का जितना अपराध है, उसमें तुम्हारा भी भाग कम नहीं है। नहीं, विशाल! हम बाहुबली को तुमसे कहीं ज्यादा जानते है। वह दूध पीता हुआ बालक नहीं कि किसी के भड़काने से पहाड़ से टक्कर लेने के लिए तैयार हो जाएगा। और यदि हो, तो भी हम एक भागे हुए राजा को बन्दी नहीं रख सकते। विशाल, तुम उन्हें आदरपूर्वक कटक से बाहर पहुँचा दो।"

पिताजी की आज्ञा के प्रति शीश झुकाकर विशालकीर्ति शिविर के द्वार की ओर बढ़ा।

भरत ने कहा– "और सुनो, विशाल! महाराज वज्रबाहु से कहो कि हमें खेद है कि हमारे सैनिकों ने व्यर्थ में कष्ट दिया। हमें व्यक्तिगत रूप से उनसे कोई बैर नहीं है। वह चाहें, तो अब भी हमें नमस्कार करके अपना खोया हुआ राज्य वापस ले सकते हैं।"

विशाल इस अन्तिम आज्ञा के प्रति शीश झुकाकर बाहर निकलना ही चाहता था, कि प्रतिहारी ने प्रवेश करके सूचना दी। "सम्राट की जय। समाचार है कि महाराज वज्रबाहु के साथ में आई कन्या उनके परिवार की नहीं है। वह वैजयन्ती की राजकन्या है, जो स्वतन्त्र रूप से महाराज बाहुबली के पास जा रही थी। वह सम्राट से भेंट करने की अनुमति चाहती है।"

"वैजयन्ती की राजकन्या!" भरत ने आश्चर्य से महामंत्री की ओर देखते हुए कहा– "यह वही राजकुमारी है न, जिसने बाहुबली के लिए स्वयंवर भंग कर दिया था ? ओह उससे भेंट करने में हमें प्रसन्नता अनुभव होगी। किन्तु हमें विस्मय है कि वह हमसे कहना क्या चाहती है ?"

महामंत्री ने कहा– "शायद वह महाराज बाहुबली के लिए श्रीमन् से कुछ प्रार्थना करे।"

भरत ने उपहासपूर्ण दृष्टि से महामंत्री की ओर देखा। मंत्रियों की बुद्धि कैसी होती है, वह सोच रहे थे! इन्हें हर अच्छी–बुरी बात में संशय होता है, और मनुष्य की हम साधारण चाल में कूटनीति की गंध आती है।

महाराज भरत की दृष्टि तात्पर्य समझकर चतुर मंत्री ने गरदन नीची कर ली। भरत ने प्रतिहारी को वैजयन्ती की राजकुमारी को अपने सम्मुख उपस्थित करने की आज्ञा दी। उसने चक्रवर्ती को सिर झुकाकर वहाँ से प्रस्थान किया।

विशालकीर्ति प्रतिहारी से दो कदम आगे चला। वह सीधा उस शिविर में पहुँचा, जहाँ महाराज वज्रबाहु को रखा गया था। शिविर में घुसते ही उसने दोंनो हाथ जोड़कर महाराज वज्रबाहु को प्रणाम किया।

उसने सामने देखते ही वज्रबाहु की त्योरियाँ तन गई। "यदि तुम एक बन्दी का उपहास करने के लिए आये हो, युवक! तो हम कहेंगे कि तुमने बहुत अनुपयुक्त समय ढूँढा है।"

विशाल ने गम्भीरता के साथ कहा– "जरा समझने में जल्दी मत कीजिये, महाराज वज्रबाहु! मैं आपको किस प्रकार विश्वास दिला सकता हूँ, कि मैं आपका कितना बड़ा शुभचिंतक हूँ। मैंने पिताजी से आपकी निर्दोषिता के बारे में जितना कहा है, मुझे विश्वास है कि आप स्वयं भी उतना न कह पाते।"

महाराज वज्रबाहु हँस पड़े। "हम चक्रवर्ती से अपनी निर्दोषिता के बारे में एक शब्द भी न कहते, कुमार विशालकीर्ति!"

कुमार विशालकीर्ति का यह विचार कि प्रत्येक बन्दी केवल अपनी छूट की ही बात सोच सकता है। यहाँ आकर बिखर गया। उसने अपनी बात पर रंग चढ़ाने के लिए सम्राट् से कहा– "मैं आपको अपना शत्रु नहीं समझता। मैंने आज्ञा ले ली है, और आपको इसका विश्वास दिलाने के लिए स्वयं आपके पास आया हूँ, कि आपको इस अपमानजनक स्थिति से सम्मान मुक्त कर दूँ।"

"हारे हुए राजा के लिए कोई अपमान–अपमान नहीं हैं। उसका अपमान तो उसकी हार ने ही किया है। किन्तु, हमें सुनकर प्रसन्नता हुई, कि तुम हमें अपना शत्रु नहीं समझते।"

"ओह, यही तो मैं श्रीमन् से इतनी देर से निवेदन कर रहा था।" कुमार ने कुछ खिसियाते हुए कहा। पिताजी ने मेरे तर्कों से प्रभावित होकर सैनिकों की उद्दडता के प्रति खेद प्रकट किया है और कहलवाया है कि यदि एक बार भी आप चक्रवर्ती के पद के आगे नमस्कार के लें, तो आपको आपका राज्य वापस मिल सकता है।"

महाराज चलने के लिए उद्यत थे, किन्तु यह बात सुनकर सहसा वह रूककर तीव्र स्वर में बोले– " अब तक हम अपने आप को अपमानित अनुभव नहीं कर रहे थे, कुमार विशालकीर्ति! किन्तु यह कहकर तुमने हमारा अपमान किया है।"

इतने परिश्रम से बनाई कुमार की बाजी एक ही अनपेक्षित आघात से ढह जाएगी, कुमार को इसका अनुमान न था। उसे पिता की बात को किसी न किसी प्रकार कहना ही था, किन्तु वह चाहता था, कि चलते–चलाते यदि महाराज वज्रबाहु के विचार उसके प्रति अच्छे हो जावें, तो भविष्य में उसे अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिए विषेश परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। उसने बहुत ही नम्रता के साथ महाराज वज्रबाहु से कहाः

"जल्दी न कीजिए, महाराज! यह केवल चक्रवर्ती का सन्देश है। इसका अपकी रिहाई से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए मैंने पहले ही पिताजी से छुटकारे की आज्ञा ले ली थी, कि कहीं वह इसे एक शर्त का रूप न दे दें। मैं पहले ही से आपके आत्म–सम्मान के भाव को पहचानता था और मुझे विश्वास है कि मैंने भूल नहीं की थी।"

महाराज वज्रबाहु तनिक स्थिर हुए। उन्होंने चलने का उपक्रम करते हुए कहा– "भरतेश से कहना कि वज्रबाहु रतनपुर के मैदान से इसलिए नहीं भागा था कि उसे अपने प्राणों से मोह था। वह केवल इसलिए वहाँ से पलायन करके गया था, कि उसे भरत को किसी ऐसे युद्ध में हराना था, जिसमें हम और वह दोनों सम्मिलित हों।"

विशालकीर्ति ने सोचा कि उसके पिता ने वज्रबाहु जैसे नाग को स्वतंत्र करने में कितनी बड़ी भूल की है। किन्तु अब समय निकल गया था। वह आश्चर्यान्वित हो, वज्रबाहु की सूरत को देखता रह गया।

शिविर से बाहर आकर विशाल ने दूसरे शिविर से उनके साथियों को मुक्त किया। तब वज्रबाहु ने पूछा– "और हमारे साथ की वह लड़की ?"

विशाल ने कहा– "वह चक्रवर्ती से भेंट करेंगी।"

एक ही बात में वज्रबाहु राजनन्दिनी के उद्देश्य को समझ गये। मन–ही–मन उन्होंने राजनन्दिनी की सफलता की कामना की और उसकी बुद्धि को सराहा। फिर वह सोचते–सोचते विशाल के साथ–साथ चलें। उन्होंने सोचा कि किस प्रकार बाहुबली उसे उसके लिए धन्यवाद देंगे।

विशालकीर्ति के साथ आया प्रतिहारी एक अन्य शिविर से राजनन्दिनी को लेकर उसी समय चक्रवर्ती के सामने उपस्थित करने जा रहा था। राजनन्दिनी ने दूर से महाराज वज्रबाहु को देखा और हाथ हिलाकर उसने अपनी समस्त शुभकामना उन पर प्रकट कर दी। साथ ही उसके होंठो से कुछ शब्द भी निकलते प्रतीत हुए, जिनको समझने के लिए वज्रबाहु को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ा।

27

भरत चक्रवर्ती के शिविर में प्रवेश करके राजनन्दिनी ने अपना सिर झुकाया, और चक्रवर्ती के सम्मान का यथोचित प्रदर्शन किया।

भरत ने एक क्षण चुप रहकर अपने सामने उपस्थित लड़की के मुख को और उसके भीतर निहित दृढ़ता को लक्ष्य किया, और तत्पश्चात् कहा– "तुम हमसे कुछ कहना चाहती हो, बहन ?"

राजनन्दिनी ने भी उसी भाँति भरत के मुख का निरीक्षण किया। फिर भरत के प्रश्न का उत्तर दिया– "बहन भाई से कुछ कहना तो चाहती है, किन्तु उसे भय है कि कहीं भाई नाराज न हो जायें।"

"जो कुछ तुम कहना चाहती हो, निडर हो कर कहो, हम सुनेंगे।" भरत ने आश्वासन दिया।

"क्या मैं पूछ सकती हूँ कि सम्राट को अपने सहोदर पर इतना कोप क्यों हैं ?" राजनन्दिनी ने सीधा प्रश्न किया।

"हमें कोप नहीं हैं, बहन, हमें दुःख है, किन्तु कठोर राजनीति के सामने हम विवश हैं।" भरत ने प्रत्याशित प्रश्न का उत्तर दिया।

"सम्राट ने कभी यह भी सोचा कि यह विवशता राजसत्ता का अहंकार भी हो सकती है ? यदि सम्राट चक्रवर्ती न होकर एक साधारण राजा होते, तब भी क्या भाई पर खड्ग् उठाते ?" राजनन्दिनी ने दूसरा प्रश्न किया।

"हमने तुम्हें राजनीति पर बोलने का अधिकार नहीं दिया, बहन। तुम्हें जो कहना है उसे शीघ्र कहकर समाप्त करो, ताकि इससे भी अधिक आवश्यक कामों को देखा जा सके।"

"सम्राट यह भूल गये कि संसार क्या कहेगा, आने वाली संतत्ति क्या कहेगी। भगवान ऋषभदेव ने जिस राज्य को एक तृण के समान त्याग दिया, जगत को अहिंसा और प्रेम का पाठ पढ़ाया, उन्हीं का पुत्र भरत उस राज्य के लिए अपनी असंख्य सेनायें लेकर छोटे भाई पर टूट पड़े, पृथ्वी के एक छोटे–से टुकड़े के लिए, झूठी मान–बड़ाई के लिए।"

राजनन्दिनी के बोलने का प्रवाह जैसे एक अपूर्व ओज का साथ लेकर उतरा था। चक्रवर्ती के सम्मुख रहने का संकोच कुछ ही शब्दों के साथ लोप हो गया था। जिस लड़की को भरत ने एक साधारण वायु का झोका मात्र समझा था, वह तो आँधी और बवंडर निकली। जो–जो वहाँ उपस्थित था, वही सुनकर स्तब्ध रह गया। यह चक्रवर्ती की मान–प्रतिठा का प्रश्न था, जो सभी की उपस्थिति के सम्मुख राजनन्दिनी के उद्दंड जिह्वा से निकला था और जिसका उत्तर देना ही था।

भरत ने उत्तर दिया– "हमें पृथ्वी के टुकड़े की चाह नहीं है। हमने जितने भी राजाओं को जीता, किसी से एक सुई की नोक के बराबर भी जमीन नहीं ली। हमें दुःख तो यह है कि पृथ्वी के समस्त राजा हमें सिर झुकायें और हमारा अपना भाई हमारी एक आज्ञा तक न माने। हम बाहुबली का अहंकार मिटाकर छोड़ेंगे। तुम भगवान ऋषभदेव के कुल–मान की बात कहती हो। हमने भगवान के कुल को एक ऐसा मान दिया है, जो सदा अमर रहेगा। जब तक यह पृथ्वी रहेगी, इस पर भरत का नाम अंकित रहेगा।"

राजनन्दिनी के मुख पर एक अनिर्वचनीय घृणा का भाव आकर लुप्त हो गया। उसने भरत के उत्तर में प्रत्युत्तर देते हुए कहा– "अवश्य अंकित रहेगा, सम्राट्! किन्तु उसके साथ कभी न मिटने वाला काला धब्बा सम्राट् की कुलकीर्ति पर लग जायगा। भरत के नाम के साथ लोग यह भी याद रखेंगे कि कभी इतिहास में इस नाम का एक चक्रवर्ती राजा अपने अहंकार से भाई का अहंकार मिटाने चला था। किन्तु सम्राट्, जो अपने अहंकार पर स्वयं मर–मिटने को तैयार हैं, उनका अहंकार मिटता नहीं, पूजा जाता है।"

सम्राट आँखें फाड़े अपनी इस नवनिर्मित बहन को देखते रह गये। किन्तु महामंत्री ने तीव्र स्वर में कहा– "लड़की, तू बहुत वाचालता से बातें कर रही है। सम्राट् ने कृपा करके तुझे सम्मान के साथ बोलने का अवसर दिया था, किन्तु तुने उसका दुरूपयोग किया है।"

राजनन्दिनी ने मुस्कराकर कहा– "बहन, कभी भाई से वाचाल नहीं होती। बहन बनाते समय सम्राट् को ही पहले कुछ अधिक सोचना था। यदि महामंत्री को मेरी वाचालता से दु:ख है तो मैं सम्राट् से उसकी क्षमा चाहती हूँ।"

इस दोहरे उत्तर से महामंत्री जल–भुन कर राख हो गये।

"महामंत्री को ही नहीं, हमें भी अपनी बहन की बातों को सुनकर दु:ख पहुँचा है। किन्तु हम अपनी बहनों को क्षमा करते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं, कि वह घटनाओं को समझने में कुछ अधिक बुद्धि से काम ले।" भरत ने कहा–

राजनन्दिनी ने फिर अपना सिर झुकाया और नम्र स्वर में बोली– "मुझे दु:ख है, कि सम्राट् को मेरी वाचालता से कष्ट पहुँचा है। सम्भव है मेरे पास बुद्धि न हो और मैं उससे उचित काम न ले सकूँ। किन्तु मेरे पास हृदय है और मैंने उससे बहुत काम लिया है। प्रत्येक नारी लेती है। किन्तु शोक, प्रत्येक भाई नहीं लेता। मैं आज्ञा चाहती हूँ, सम्राट्! मैं और कुछ नहीं कहूँगी।"

इस बीच राजनन्दिनी के सम्राट् से मिलने की खबर सारे शिविरों में फैल चुकी थी। वैजयन्ती–नरेश स्वयं इस खबर की सच्चाई जानने के लिए चक्रवर्ती के शिविर की ओर आये थे। द्वार पर ही उन्होंने सम्राट् और राजनन्दिनी के अन्तिम वार्तालाप सुने थे। सम्राट् को प्रणाम करके जब राजनन्दिनी प्रतिहारी के साथ शिविर से बाहर निकली, तो पिता की क्रोधित मुद्रा को देखकर उसने अपनी निगाहें नीची कर लीं।

वैजयन्जी–नरेश अपनी पुत्री को अपने डेरे में ले आए।

वह अपनी बेटी की उद्दण्डता से बहुत अधिक कुपित थे। उन्होंने राजनन्दिनी की इस स्वेच्छाचारिता की भर्त्सना करते हुए कहा– " हमने तुम्हें बाहुबली के पास जाने की अनुमति दी थी, न कि चक्रवर्ती के पास जाकर उनका अपमान करने की।"

राजनन्दिनी पिता की ताड़ना चुपचाप पी गई। उसका हृदय क्रोध, लज्जा और प्रतारणा की भावना से अन्दर–ही–अन्दर जल रहा था। वह बहुत देर तक नीचे की ओर देखती रही। कुछ देर बाद उसने कहा– "मैं जाने की आज्ञा चाहती हूँ, पिता जी।"

वैजयन्ती–नरेश ने कहा– "हमारी हँसी उड़ चुकी है। अब हम तुम्हें कहीं जाने की आज्ञा नहीं दे सकते।"

राजनन्दिनी बिलख उठी। "मैं उनसे एक भेंट तो अवश्य ही करूँगी, पिता जी!"

वैजयन्ती–नरेश ठक्–से खड़े रह गए। "लेकिन, बेटी! अब तुम कहाँ जाना चाहती हो ?"

"महाराज बाहुबली के पास।" राजनन्दिनी का संक्षिप्त–सा उत्तर था।

"महाराज बाहुबली के पास जाने से अब क्या होगा ? इस रात के समाप्त होते ही युद्ध का आरंभ हो जाएगा। जब तक युद्ध समाप्त न हो, तुम यहाँ कटक में रहो।"

"नहीं, पिताजी! यह मेरे जीवन की पहली और अतिम साध है।" राजनन्दिनी ने निश्चय के स्वर में कहा– "यदि यह पूरी न हुई, तो मैं मर जाऊगी।"

वैजयन्ती–नरेश ने हताश दृष्टि से पुत्री के मुख की ओर देखा, कुछ सोचा, फिर शान्त स्वर में उन्होंने कहा– "अच्छा अगर तुम जाना ही चाहती हों, और अभी जाना चाहती हो, तो हम अभी प्रबन्ध कराए देते है।" और बिना राजनन्दिनी की ओर देखे ही वह शिविर से बाहर निकल गए।

कुछ देर बाद दस अंगरक्षकों के अश्व राजनन्दिनी के रथ के पास कसे–कसाए, अपने सवारो को पीठ पर लिए खड़े थे। राजनन्दिनी ने पिता के पाँव छुए और एक दीघ्र आर्शीवाद लेकर वह रथ पर चढ़ गई। रथ गतिवान होकर कटक से बाहर निकला, और क्षण भर में ही उसके अश्व हवा सें बातें करने लगे।

सुबह हो गई, किन्तु रथ का चलना नहीं रूका, राजनन्दिनी ने उनींदी आँखों से सारथी की ओर देखा, उस दृष्टि में अविष्कार और सन्देह की पुट था। उसने चिल्ला कर कहा– "सारथी, अभी बाहुबली का कटक नहीं आया ?"

वायु का तीव्र वेग उसके स्वर का अधिकांश अपने साथ उड़ा ले गया। किन्तु सारथी ने उसका स्वर सुन लिया था। उसने रथ रोक लिया और अत्यन्त विनीत वाणी में बोला– "देवी! अपराध क्षमा करें, अब महाराज बाहुबली का कटक कभी नहीं आएगा, हमें तो महाराज ने आपको वैजयन्ती ले जाने का आदेश दिया है।"

राजकुमारी राजनन्दिनी की आँखों में लाल डोरे खिंच गए। क्षोभ और परिताप से वह काँपने लगी। "वैजयन्ती!....नहीं, नहीं, मैं वैजयन्ती नहीं जा सकती, हाँ! पिताजी!...यह आपने क्या किया।"

किन्तु पिता ने वही किया था, जो उन्होंने अपनी पुत्री के लिए शुभ समझा था।

राजनन्दिनी रथ से कूद पड़ी। उसने कुपित स्वर में कहा– "जाओ, रथ को लौटा ले जाओ। पिताजी से कहना कि राजकुमारी हमें अकेला छोड़कर अपने आप भाग्य के भरोसे कहीं चली गई है।"

अंगरक्षक घोड़ों से उतर पड़े। सारथी हाथ बाँधकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, महाराज हमें कभी जींदा न छोड़ेंगे। राजकुमारी! हम पर दया कीजिए, वैजयन्ती चलिए।"

राजकुमारी ने अपने आँसू पोंछते हुए दृढ़ स्वर में कहा– "नहीं, सारथी! इसमें तुम्हारा कुछ भी दोष नहीं माना जाएगा। महाराज तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे, जो भी हो, मैं वैजयन्ती नहीं जाऊँगी।"

राजनन्दिनी को अपनी जिद पर अटल जान कर सारथी ने उसे फिर वापस कटक ले चलने का प्रस्ताव किया। राजकुमारी ने यह सोचा कि जंगल में भटक कर भी वह बाहुबली के पास नहीं पहुँच सकती। यदि पिताजी का कहना सही था, तो अगला दिन हो गया है, और अब तक भरत और बाहुबली की सेना का संग्राम छिड़ चुका होगा। यदि वह बाहुबली से उनके जीते–जी मिलना

चाहती है, तो उसके लिए यह शुभ होगा, कि वह उन लोंगो के साथ वापस चल पड़े, और युद्ध भूमि के पास पहुँचने पर अपना कर्तव्य फिर से निश्चिंत करे। उसने सारथी का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और रथ तुरन्त ही उसे लेकर वापस लौट चला।

रथ के पहियों की घरड़–घरड़ के साथ राजनन्दिनी के विचारों के धौंसे उसके मस्तिष्क में बजने लगे। अब क्या होगा, यही संशय उसके मन में बार–बार रह–रहकर उठने लगा। उसके पिताजी ने उसे धोखा दिया था। किन्तु पिता का दिया हुआ धोखा कभी धोखा नहीं कहलाता। संसार यही समझता है कि उन्होंने जो कुछ किया अपनी बेटी की भलाई के लिए किया। बाहुबली के प्राण जाएँ, चाहे रहें, किन्तु राजनन्दिनी के प्राण बचाना उनका पहला कर्तव्य था, इस कर्तव्य पालन में उन्होंने राजनन्दिनी के मन को कितना दुःख पहुँचाया था, इसका लेखा–जोखा आसानी से लगने वाला नहीं था।

क्या जब तक रथ युद्ध–भूमि में पहुँचेगा, बाहुबली अपने नन्हें–से बल से चक्रवर्ती का सामना करते रह सकेंगे ? यदि रथ रात के समय वहाँ पहुँचा, तो क्या युद्ध समाप्त हो चुका होगा ? क्या चक्रवर्ती के साथ किया हुआ किसी छोटे–मोटे राजा का रण एक दिवस के पश्चात् भी अनिर्णय की दशा में रह सकता है ? ओह! क्या वह इसी जीवन में इन्हीं आँखों से फिर एक बार बाहुबली को देख सकेगी।

राजनन्दिनी के हृदय में ये सब प्रश्न उठ उठ कर भयानक आन्दोलन का सूत्रपात कर रहे थे। एक ओर से उसे 'हाँ' में उत्तर मिलता था। किन्तु साथ ही दूसरी ओर से जाने तो कैसा असन्तोष उसके मन में शूल की तरह चुभ–चुभ जाता था।

कब राजनन्दिनी इन्हीं विचारों से थक–कर रथ के हिचकोलों में सो गई, कुछ पता नहीं चला, किन्तु जब उसकी आँख खुलीं, तो रात हो चुकी थी और रथ खड़ा था।

उस दिन युद्ध–भूमि में भी एक सुबह हुई थी।

28

दोनों पक्षो की सेनाएँ एक–दूसरे के आमने–सामने आ खड़ी हुई। एक ओर भरत की विशाल वाहिनी थी। दूर तक सजे हुए हाथियों की असंख्य कतारें दिखाई देती थी। अनगिनत रथों पर बालरविकी चमचमाहट आँखें चौंधिया जाती थीं। अश्वों पर शस्त्रों से सजे सुसज्जित योद्धागण साक्षात् कालदूत–से प्रतीत हो रहे थे, और जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पैदल सिपाहियों के व्यवस्थित समूह दृष्टिगोचर हो रहे थे। यह थी वह भरत की वह चतुरंगिनी, जो कभी अयोध्या से सारिणी बनकर निकली थी, और जो आज सागर हो गई थी।

दूसरी ओर बाहुबली की सेना थी, जो चक्रवर्ती की चतुरंगिनी के सामने बड़ाई–छुटाई का एक अपूर्ण दृश्य उपस्थित कर रही थी। सबसे आगे अश्वारोही दल की एक लम्बी पंक्ति थी। उसके पीछे एक ही पंक्ति हाथियों की थी। रथ यत्र–तत्र ही नजर आते थे, और पैदल सेनाएँ हाथियों के दीर्घ शरीरों की ओट से दिखाई ही नहीं दे रही थीं। किन्तु चक्रवर्ती सेनाओं के सामने बाहुबली ने अपनी छोटी–सी सेना का अद्‌भुत व्यूह रचा था।

उसी समय चक्रवर्ती का विशाल और बलिष्ठ हाथी उन्मत्त पगों से भरत को एक ही नजर में अपनी तथा बाहुबली की सारी सेनाओं का निरीक्षण कराता हुआ, चतुरंगिनी के आगे आया, बीच में आकर चक्रवर्ती ने रणभेरी बजाने का इशारा किया।

जोरों से रणसिंघे की आवाज चारों दिशाओं में गुँज गई। साथ ही भरत के महारथी उसके चारों ओर आकर एकत्र हो गए। दोनों पार्श्वों से हाथियों के समूह उन्नत शिखर पर्वतों की नाई तेजी से आगे बढ़े। रणकौशल से बाहुबली की अश्व–पंक्ति दोनों किनारों की ओर फैल गई, और साथ ही आधा–आधा भाग दोनों किनारों पर सिमटता दिखाई दिया।

इस दृश्य को लेकर भरत के मन में भीषण उथल–पुथल का सुत्रपात हुआ। बचपन की स्मृतियों ने एक बार फिर उसके मानस पटल पर अंकित होकर उछलकूद मचानी आरम्भ कर दी। कहाँ वह बाहुबली को खेल खिलाता था, उसका हाथ पकड़–पकड़ कर उद्यान की सैर कराता था! पोदनपुर की विजय के बाद किस प्रकार दोनों भाई गले मिले थे! कैसे उसने बाहुबली को पिता के साथ ही वैराग्य लेने से हठपूर्वक रोका था। स्नेह, स्नेह, स्नेह, इस रक्त प्लावित हो

जाने वाली भूमि में इस एक शब्द से बोध होने वाले महान् सांसारिक तत्व का सर्वथा अभाव दिखाई दे रहा था। उसके साथ ही राजनन्दिनी के अद्भुत प्रभावकारी शब्दों ने ठीक उसकी आँखों के सामने उसके कृत्यों की कालिमा का नग्नचित्र उपस्थित करना आरम्भ कर दिया। क्या कहा था उसने ? 'संसार क्या कहेगा ? आने वाली संतति क्या कहेगी ? भरत असंख्य सेना लेकर भाई पर टूट पड़ा....जो स्वयं मिटाने को तैयार है, उसका अहंकार मिटता नहीं, पूजा जाता है। भरत अपने अहंकार से बाहुबली का अहंकार मिटाने चला है...एक कभी न मिटने वाला धब्बा सम्राट् की कुलकीर्ति पर लग जाएगा।' राजनन्दिनी के साथ हुआ समस्त वार्तालाप वातावरण में सजीव ध्वनि बनकर छा गया।

क्षण–क्षण में एक दूसरे के रक्त की प्यासी सेनाएँ मानों समाप्त होती जा रही थीं और भरत की मानसिक कल्पनाओं में युगों–युगों की संचित स्मृतियाँ वृहदाकार रूप धरकर तांडव नृत्य का आयोजन कर रही थीं। अद्भुत है मानव का मन जिसमें युग क्षणों के समान लगते हैं और एक क्षण में काल और छोर समा जाता है! थोड़ी ही देर में बाहुबली की नन्ही–सी सेना अपना संजीव और सज्जित रूप त्यागकर पृथ्वी पर बिछ जाएगी। चारों ओर खून–ही–खून दिखाई देता होगा। सुन्दर और शान्त जीवन कैसा एक घृणास्पद और वीभत्स मृत्यु के रूप में परिवर्तित हो जाएगा। तब भरत किस से कहेगा, तू मेरी आज्ञा मान ? भरत किससे कहेगा तू मेरे अधिन हो, तू मुझे नमस्कार कर ? सब कुछ ही तो समाप्त हो जाएगा। हाँ, बचा रहेगा भरत के लिए अपयश और पश्चात्ताप की ज्वाला, भरत के जल मरने को।

सहसा भरत का हाथ ऊँचे उठाः "ठहरो"

क्षण मात्र में बढ़ती हुई सेनाएँ जहाँ–की–तहाँ जड़ हो गई। खड्ग जहाँ उठे थे, वहीं रूक गये, चारों ओर आदेशा यन्त्रों की तरह पालन किया गया। चक्रवर्ती के सामने आ कर महासेनापति ने पूछा– "आज्ञा, सम्राट् ?"

चक्रवर्ती ने आज्ञा दी– "महासेनापति, युद्ध बन्द करो! महावत, हमें बाहुबली के सम्मुख ले चलो!"

कुछ ही समय के भीतर भरत का हाथी रणभूमि के बीचों–बीच पहुँच गया। उधर जब बाहुबली ने भरत को आते देखा, तो उसका हाथी भी सेना की पंक्तियों के बीच में से निकला और दोंनो भाई आमने–सामने आ गये।

बाहुबली ने कहा– "भैया को प्रणाम!"

भरत ने प्रसन्नता से फूलकर कहा– "चिरायू हो, बाहुबली तुमने हमें प्रणाम किया। हमें तुमसे यही आशा थी। आओ, गले मिलें, युद्ध किस बात का ?" भरत ने बाँहें फैला दीं।

"यहाँ भूल गये, भैया! यह छोटे भाई का बड़े भाई को प्रणाम है, राजा बाहुबली का भरत चक्रवर्ती को नहीं।" बाहुबली ने साभिमान कहा–

"क्यों ?" भरत ने कहा– "क्या तुम्हें हमारे चक्रवर्ती होने की खुशी नहीं हैं ? क्या भाई को भाई का वैभव नहीं सुहाता ?"

"भैया, तुम्हारे भाई की दृष्टि में वैभव का कोई मूल्य नहीं हैं। मैं वैभव को सिर नहीं झुकाता; विनय को सिर झुकाता हूँ।"

"तो क्या तुम चाहते हो कि संसार हमारी हँसी उड़ाए और कहे कि भरत ने जगत का मन तो जीता, भाई का मन नहीं जीता गया ?"

"सेनाओं से मन नहीं जीते जाते, भैया! सिर जीते जाते है।"

"क्या तुम पसन्द करोगे कि तुम्हारी एक भावना के लिए इतने जीते जागते मनुष्यों के सिर कट जायें ?" भरत ने बाहुबली की सेनाओं को इंगित किया।

"दिग्विजय की दीवार जीते जागते मनुष्यों के रक्त और मांस से ही खड़ी होती है। इतने मनुष्यों की भेंट तो सागर में बूँद के समान होगी। फिर भी अपने भैया जैसे देवता को मैं यह बलि देने के लिए प्रस्तुत हूँ।"

किसी तरह भी बाहुबली को मानते न देखकर भरत चिन्तामग्न हो गया। अन्त में उसने कहा, "इस संसार में अब और बूँदें नहीं गिरेंगी, बाहुबली! जो गिर चुकी हैं, उन्हीं में हम डूब गये हैं। हमने सोचा था, कि दिग्विजय से रोज–रोज के रक्तपात बन्द हो जाएँगे। किन्तु स्वयं तुम ही हमारा विरोध करोगे, इसकी आशा तो स्वप्न में भी न थी।"

बाहुबली अविश्वास के कारण चुप रहा। कुछ क्षण बाद भरत ने विचारपूर्वक प्रस्ताव किया– "हम चाहते हैं कि इक्ष्वाकुवंश को जो गौरव मिला है, वह इक्ष्वांकु वंश में ही रहे, और रक्त भी न बहे।"

"इसका अर्थ क्या है, भैया ? मैं नहीं समझा।"

"यह झगड़ा हमारा आपस का है।" भरत ने उन्नत मस्तक हो कर कहा। "हम आपस में ही लड़कर उसकी हार–जीत का निर्णय क्यों न कर लें ?"

"और उस चतुरंगिनी का क्या होगा ?" बाहुबली ने असीम आश्चर्य से पुछा।

चतुरंगिनी तुम्हारे ऊपर प्रहार नहीं करेगी। वह हम दोनों भाइयों की लड़ाई का तमाशा देखेगी, और हममें से जो जीतेगा वही उसका स्वामी होगा, वही चक्रवर्ती होगा। पराजित भाई विजेता भाई को उसका मान देगा।"

"भैया!" बाहुबली हर्ष और विस्मय से लगभग चीख उठा। मन–ही–मन उसने भरत की उच्चता की भारी सराहना की।

जब दोनों ओर की सेनाओं ने उपर्युक्त निर्णय सुना, तो वे हर्ष और उल्लास में डूब गईं। 'चक्रवर्ती भरत की जय' 'महाराज बाहुबली की जय' के नारों से आकाश गूँज उठा।

29

द्वन्द्व युद्ध तीन प्रकार से होना निश्चित हुआ। खड्गयुद्ध, दृष्टियुद्ध और मल्ल युद्ध! सेनाओं में इसकी घोषणा हो गई। एक छोटे से मैदान को घेर कर दोनों ओर की सेनाओं का जमघट लग गया। सामने ही चक्रवर्ती का सिंहासन था, जिसके दोनों ओर आमंत्रित राजाओं को आसन देकर सम्मानित किया गया था। दूसरी ओर बाहुबली का सिंहासन ठीक चक्रवर्ती के सिंहासन के सामने था, और उसके समीप ही महाराज वज्रबाहु का आसन रखा हुआ था।

जय–पराजय का निर्णय करने के लिए तीन बड़े राजाओं की एक मंडली चुनी गई। रणभेरी फिर एक बार बजी। दोनों भाई एक साथ अपने–अपने सिंहासन से उठे और बीच मैदान में आ गये। फिर एक बार जयघोष के नारों से आकाश गूँज उठा। दोनों महाबलियों ने अपनी–अपनी तलवारें खींच लीं, एक साथ आकाश में दो बिजलियाँ–सी तड़क उठीं, और लोहे पर लोहे का प्रहार हुआ। फिर निरन्तर आक्रमणों का ताँता बँधा, यहाँ तक कि तलवारों का आकार तक दिखाई देना बन्द हो गया। सूर्य आकाश में और ऊँचे चढ़ता गया, ताकि ठीक बीच में आकर वह इस अपूर्व संघर्ष को देख सके। भरत और बाहुबली पसीने–पसीने हो गये। कब किसका सिर पृथ्वी पर आ गिरेगा, कुछ पता नहीं लगता था। चारों दिशाएँ स्तम्भित हो गई थीं।

सूर्य ने फिर एक बार झुकना आरम्भ कर दिया था। इतनी देर के युद्ध के बाद भी जब हार–जीत का कुछ निर्णय नहीं हुआ, तो पंचों ने एकमत होकर दोनों वीरों को बराबर ठहराया।

युद्ध बन्द करने का डंका बजा और दोनों भाइयों ने तलवारें म्यानों में कर ली। भरत और बाहुबली एक–दूसरे से कुछ देरी पर खड़े हाफँने लगे, सहसा बाहुबली ने दृष्टि उठाई। भरत उस की ओर प्रेममयी दृष्टि से देख रहा था। भरत अपने हाथ बढ़ा कर स्वयं दो पग आगे आया और भाई–भाई के गले से लिपट गया। दोनों की बाहुओं के यत्र–तत्र बिखरें घावों के रक्त से दो पतली–सी धाराएँ निकलीं और एक–दूसरे से मिलकर पृथ्वी पर चू गई।

कुछ समय बाद दृष्टि युद्ध का आरम्भ हुआ। सूर्य को बाएँ रूख कर, दो बराबर ऊँचाई की स्वर्ण चौकियों पर भरत और बाहुबली आसीन हो गये। धीरे–धीरे दोनों भाइयों की दृष्टियाँ उठीं और एक–दूसरे में उलझ गई, सूर्य झुकता गया, झुकता गया, किन्तु पलकें जो एक बार उठीं, तो फिर नहीं झुकीं। देखते–देखते भरत की आँखों में पानी आ गया, दो बूँद आँसू उसकी आँखों से गालों पर लुढ़क गये। भरत इस बार हार गया।

पंचों ने इशारा किया, युद्ध समाप्त होने का डंका बजा, और भरत पलक झपका कर उठ गया। किन्तु बाहुबली! बाहुबली अब भी दृष्टि सीधी किये ज्यों–का–त्यों स्थिर बैठा था। भरत उसके पास तक आया, उसके कन्धे पर हाथ रखा और दूसरे हाथ की हथेली उसके मुँह पर फेर उसकी पलके बन्द कर दीं।

बाहुबली की सेना ने 'महाराज बाहुबली की जय' का घोष किया। किन्तु भरत की चतुरंगिनी चुप थी। भरत ने कहा– "हमारी सेना चुप क्यों है ? कहो 'महाराज बाहुबली की जय' के घोष से मानों समस्त वायुमण्डल व्याप्त हो गया।

मल्लबल युद्ध का समय आ गया। अखाड़ा तैयार था। भरत और बाहुबली लंगोट कसे अखाड़े में खड़े थे। मारूबाजा बजना आरम्भ हुआ और दो मस्त गजों की तरह वे एक–दूसरे से भिड़ गये। दोनों मल्लयुद्ध की कला में पारंगत थे। दाँव चल रहें थे, लेकिन लगा कोई नहीं रहा था। शरीरों से स्वेदकण फूटने लगे थे और मिट्टी उनसे चिपट गई थी।

अचानक बाहुबली ने पैंतरा बदला, और उसने फुरती से भरत को अपनी हथेंलियों पर रखकर ऊँचे आकाश में उठा लिया। बस भरत पृथ्वी पर गिरा और सब–कुछ समाप्त हो जायगा। कितनी ही देर तक भरत बाहुबली के हाथों पर रहा, लेकिन बाहुबली ने उसे भूमि पर नहीं पटका। इस बीच में बाहुबली के सामने विचारों की दुनिया बस गई।

जिस भाई ने उसे पकड़–पकड़ कर चलना सिखाया, जिस भाई की गोदी में पल कर वह बड़ा हुआ, जिस भाई ने उसके प्रेम के वश होकर अपनी अजेय और विशाल सेना को एक ओर खड़े रहकर तमाशा देखने के लिए छोड़ दिया, क्या वह उसी भाई को पृथ्वी पर पटकेगा ?

कितनी चंचला है यह लक्ष्मी, भरत ने इसके लिए लाखों का खून बहाया, लाखों को बेघरबार किया, वर्षों गर्मी–सर्दी सही, किन्तु अभी उसके उपभोग करने का समय भी नहीं आया था, कि वह उसे नगर–नारी की तरह छोड़ कर चली जाने के लिए तैयार है! धिक्कार है ऐसी धन–सम्पदा पर! एक दिन आएगा, जब न भरत रहेगा, न बाहुबली। केवल उनकी अस्थिरता और निःसारता पर हँसती हुई यह दूनिया रह जाएगी, और उनके किए हुए कर्मों का ऐसा लेखा उनके साथ बँधा चला जाएगा, जिसका सारा आधार और जिनके द्वारा कमाई माल–संपदा सब दुनिया में छूट जाएगी।

बाहुबली भरत को लिए अखाड़े से बाहर आया। चारों ओर 'महाराज बाहुबली की जय' का स्वर मुखरित हो उठा, किन्तु बाहुबली इससे विचलित

नहीं हुआ। उसने चक्रवर्ती के सिंहासन के पास जाकर भरत को उस पर प्रतिष्ठित कर दिया। बाहुबली के तुमुल जयघोष से फिर सारा वातावरण ध्वनित हो उठा। वह घोष रूकने में ही नहीं आ रहा था।

भरत तुरन्त सिंहासन से उतर आया। "अब यह सिंहासन हमारा नहीं रहा बाहुबली तुम जीते हो, इस पर तुम्हारा अधिकार है!"

"बाहुबली तो उसी समय हार गया था, जब भैया ने चतुरंगिनी के बढ़ते हुए कदम रोक दिये थे।" बाहुबली ने शान्त वाणी में उत्तर दिया।

भरत ने कहा– "हार को जीत कहने से हार जीत नहीं हो जाती। अब आओ, बाहुबली यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारी है, इसे सम्भालों।"

"जो तुम्हें छोड़ कर मुझसे लिपटना चाहती है, उसे मैं संभालूँ ? ना भैया! यह वेश्या तुम्हें ही मुबारक हो।" बाहुबली ने दृढ़ स्वर में कहा।

भरत द्रवित हो गया। "बाहुबली इससे तो अच्छा था कि तुम मुझे भूमि पर ही पटक देते। तुमने इस सिंहासन पर बैठा कर मुझे भूमि के भी नीचे गाड़ दिया है। अब मुझे उबारो, बाहुबली! आओ, अपनी चीज ले लो।"

"भैया!" बाहुबली ने एक और महत्वपूर्ण और चौका देने वाली घोषणा की, "मुझे अब अपना राज्य ही नहीं चाहिए, तुम्हारा लेकर मैं क्या करूँगा ? मैने अपना भूला पथ पकड़ने का निश्चय किया है, भैया! मैंने पिताजी का पथ पकड़ने का निश्चय कर लिया है।"

बाहुबली की बात सुनकर भरत चौंक पड़ा। वैराग्य यही वह शब्द था, जिसने उसके प्रत्येक इरादे के साथ, बाहुबली के सम्बन्ध में प्रत्येक विचार के साथ, और उसकी भावनाओं के साथ भीषण द्वंद्व किया था। बाहुबली अपनी भावनाओं में मग्न होते हुए बोल रहा था:

"यह कुटुम्ब एक वृक्ष है। संध्या होते ही इस पर तरह–तरह के पक्षी आकर बैठ जाते है। रात भर वे एक–दूसरे की भावनाओं में बसे रहते हैं। सवेरा होता है और पक्षी उड़ जाते हैं। अब सवेरा हो गया है, भैया! अब मै जा रहा हूँ और मैं तुम्हारी समस्त भावनाओं के लिए, तुम्हारी स्नेहमयी भावनाओं के लिए तुम्हें धन्यवाद देता हूँ।"

भावावेश में भरत चिल्ला उठा। "बाहुबली, बाहुबली!"

बाहुबली ने शांत स्वर में कहा– "भरत भैया, हम और तुम एक ही राह के दो मुसाफिर थे। हम भाई–भाई थे, अब दोराहा आ गया है। हमारी मंजिलें एक–दूसरे से अलग–अलग हैं, दूर है। आओ हम गले मिल कर सम्मान से विदा लें। हमारा साथ यहीं तक था।"

स्वप्नचारी की तरह भरत भावातिरेक से बोला, "नहीं, बाहुबली! ऐसा न कहो, अभी दोराहा दूर है। तुम नहीं मानते, तो हम–तुम साथ एक ही सिंहासन पर बैठेंगे, मिलकर राज्य करेंगे, मिलकर उसका त्याग करेंगे। हम दोनों साथ–साथ तप करेंगे और एक ही साथ संसार बन्धन को काट कर वहाँ जाएँगे, जहाँ से फिर आने का कष्ट उठाना नहीं पड़ता।"

बाहुबली ने कहा– "भैया, तुम दुखित क्यों होते हो ? इस संसार में कब किसी का ऐसा साथ हुआ है ? अपना शरीर ही अपना साथ नहीं देता। रोग आता है, तन ढह जाता है; बुढ़ापा आता है, झुक जाता है। यह पानी का बुलबुला है, हवा आती है, यह फूट जाता है।"

भरत ने बाहुबली के सामने घुटने टेक दिये। "बाहुबली! अब तक मैं तुम्हें एक अभिमानी राजा ही समझता था, तुम कितने महान् हो यह आज ही जाना। तुम मेरे छोटे भाई नहीं, मुझसे कहीं बड़े हो, संसार से बड़े हो। मैं तुम्हारी पूजा करता हूँ।"

बाहुबली एक हाथ से अपनी आँखों के अन्तिम स्नेहाश्रु पोंछते हुए भरत को उठा रहे थे। सारा रणक्षेत्र 'बाहुबली की जय' के नारों से गुंजायमान हो रहा था। क्षण–भर में पासा ऐसा पलट गया था, जिसकी ओर किसी का अनुमान भी न जा सकता था। बाहुबली ने अपने वस्त्र उतार दिये थे।

वज्रबाहु मित्र का अकस्मात् परिवर्तन देखकर विमूढ़ हो गये थे। इसलिए अब तक उनकी जबान से एक भी शब्द नहीं निकला था। किन्तु अब उनसे न रहा गया– "जरा सोचो तो, तुम क्या–क्या छोड़ कर जा रहे हो, बाहुबली! तुम्हारे पास क्या नहीं है ? दुनिया में सबसे प्यारा भाई तुम्हारे पास है। संसार के सारे सुख जिस संपदा से खरीदे जाते है, वह लक्ष्मी आज तुम्हारे चरणों की दासी हैं। तुम्हारे पसीने पर अपना खून बहा देने वाले मित्र तुम्हारे

इशारों की राह देखते हैं। संसार का श्रेष्ठ नारी–रत्न तुम्हारे पीछे दीवाना है। और तुम क्या चाहते हो, बाहुबली ?"

बाहुबली ने हँस कर कहा– "वज्रबाहु, मित्र! मैं सन्तोष चाहता हूँ।"

इस एक उत्तर में क्या–क्या निहित था, उसे वज्रबाहु ने समझा, भरत ने समझा, किन्तु विशालकीर्ति का तरूण हृदय उसे न समझ सका, उसने कहा– "सन्तोष भी तो इसी संपदा से ही मिलता है, चाचाजी।"

बाहुबली उसकी ओर देखकर मुस्कराये। "नहीं, सन्तोष इन वस्तुओं से नहीं मिलता, पुत्र! भरत ने पृथ्वी जीती, वह अपने दिल पर हाथ रखे और उससे पूछे, क्या उसे सन्तोष मिला है। तुम उसके युवराज हो, बताओ तो, क्या तुम्हारा मन कभी एक क्षण को भी व्याकुल नहीं हुआ है ? सच्चा सन्तोष तो त्याग में है, विशाल! राग में नहीं।"

फिर विशालकीर्ति के कन्धे पर एक हाथ रखकर, दूसरा हाथ वज्रबाहु के कन्धे पर रखते हुए, बाहुबली ने वज्रबाहु को लक्ष्य करते हुए कहा– "महाराज वज्रबाहु! हो सके तो मान का त्याग करना। इससे तुम्हें सुख होगा, सबको सुख होता है।" और उन्होंने वज्रबाहु के हाथ में विशालकीर्ति का हाथ दे दिया।

भरत इस व्यवहार को कुछ भी न समझ सका। बाहुबली ने उसका हाथ पकड़कर इस बँधे हुए एक जोड़ी पर रखते हुए कहा– "भरत! तुम संरक्षक हो, विशाल को बहू मिलेगी और तुम्हें पुत्र–वधू मिलेगी, अयोध्या को उसकी युवराज्ञी मिलेगी।"

भरत, वज्रबाहु और विशालकीर्ति के नेत्र हर्ष, विषाद और आकस्मिक चमत्कार से प्रभावित–से होकर, स्थिर हुए, सब कुछ देख रहे थे। किन्तु जो कुछ भी हो रहा था, उसका अर्थ किसी की भी समझ में भली प्रकार नहीं आ रहा था। जैसे नियति अपने साथ भविष्य को बाँधकर पलायन कर रही हो! सबने बाहुबली के सामने सिर झुकाया और उनके वचनों के जो भी अर्थ निकलते थे, उन्हें हृदयंगम करने की चेष्टा करते हुए, मन–ही–मन उन्हें भविष्य में पालन करने की प्रतिज्ञा की।

सायंकाल हो रहा था। सूर्य अपनी किरणें समेट कर कहीं और उदित होने जा रहा था। उसने उस दुनिया का तमाशा देख लिया था। अब वह दूसरी दुनिया का तमाशा देखेगा। किन्तु संभवतः उसे सन्देह था कि वह इतना हृदयग्राही मनोरंजन कहीं और भी प्राप्त कर सकेगा या नहीं।

सैनिकों की आँखों से आँसुओं की धारें बहकर सूख गई थीं। कुछ लोगों ने बाहुबली के साथ ही वस्त्र त्याग किया था, कुछ लोग भविष्य में करने की प्रतिज्ञा ले रहे थे। पूजा के उपकरण सजाये जा रहे थे। और कुछ लोग महाबली बाहुबली की आरती उतार रहे थे।

एक ओर बाहुबली वन–गमन कर रहे थे, दूसरी ओर लाखों मनुष्य एक आँख से हँसते, एक आँख से रोते, उन्हें अन्तिम विदा दे रहे थे। विशाल की आँखों का पानी थमने में ही नहीं आ रहा था, और वज्रबाहु उसके कंधे पर हाथ रखे, उसे दिलासा देने का निष्फल प्रयत्न कर रहे थे।

30

राजनन्दिनी जब वापस कटक में पहुँची, आकाश पर चन्द्रमा का आधिपत्य हो गया था, और तारागण उसके भाग्य पर एक विशाल सम्मेलन कर रहे थे।

पुत्री को वापस देखकर वैजयन्ती–नरेश ठक्–से रह गये। राह में कितनी दूर जाकर क्या हुआ होगा, यह सहज ही कल्पना कर लेने की बात थी। क्यों राजनन्दिनी वैजयन्ती न पहूँच कर वापस आ गई थी, यह भी कोई नितान्त छिपी हुई बात नहीं थी। और जो बात इससे स्पष्ट थी, उसका सुखद परिणाम मनुष्य के हाथों से कितनी दूर निकल गया था, यह भी साफ ही था। उनके मुँह से केवल इतना निकला "बेटी!"

राजनन्दिनी को पिता पर क्रोध था। यह क्रोध केवल मान का क्रोध नहीं था। इसमें झल्लाहट और प्रवंचना के शिकार का क्षोभ भरा हुआ था। किन्तु रथ से नीचे उतरते ही बाप ने बेटी को गले लगा लिया ओर फूट–फूटकर रो पड़े। सारे दिन का संचित संघर्ष इस रूदन में साकार होकर मिल गया था। राजनन्दिनी ने भी अपना भाव व्यक्त न कर पाकर, उसे आँखों की राह बहा

दिया। किन्तु यह उसकी भूल थी, इसके बाद जो समाचार वह सुनने जा रही थी उसके लिए उसके पास आँसुओं का पानी कहाँ से आएगा ? नहीं आएगा, तो किस प्रकार उसके आने वाले दुःख का निवारण होगा ?

अंत में वैजयन्ती–नरेश ने कहा– "महाराज भरत को चक्रवर्ती पद देकर विजेता बाहुबली ने वैराग्य ले लिया है, बेटी।"

पिता के ये शब्द सुनकर राजनन्दिनी जहाँ–की–तहाँ जड़ हो गई। कुछ समझ में नहीं आया, कि वह क्या सुन रही हे। कुछ समय तक वह आँखें फाड़े शून्य में ताकती रही। फिर सहसा वह चिल्लाती हुई भागीः "नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैंने सपने में भी तुम्हारी पूजा की है। मैंने तुम्हें सदा अपने ह्रदय में सँजोकर रखा है।...एक क्षण भी मैंने अपने मन को कहीं भटकने नहीं दिया है।...संसार में सबको अपनी अर्चना का फल मिलता है।...मुझे भी मिलेगा।. ..हाँ...तुम इतने निर्मोही नहीं हो सकते!...." और उसके साथ–साथ उसका स्वर भी लोप होने लगा।

राजनन्दिनी की दशा जिसने देखी, उसने एक बार अपनी आँखों की कोरों को पोंछा। उसके पिता किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए अपने दुर्भाग्य का तमाशा फटी आँखों से देखते रहे। ज्योतिषी के शब्द उनके कानों में शीशे की तरह पिघलने लगे थेः 'राजनन्दिनी के भाग्य में पति–सुख नहीं है....राजकुमारी के भाग्य में पति सुख नहीं हैं...'

राजनन्दिनी को इस समय बन्धु–बान्धव किसी का विचार नहीं रह गया था। उसके अचेतन मन में केवल एक बात घूम रही थी। उसने अपने समस्त मन को एकाग्र करके जिसको चाहा, उसमें उसे त्यागने की शक्ति नहीं हो सकती।

अभी कुछ देर पहले उन्होंने वैराग्य का महान् स्वरूप देखा था, अब वह राग की प्रचंडता देख रहे थे और सिर झुका रहे थे। क्या इस राग की आग में वैराग्य का तेज झुलस जाएगा ? यही प्रश्न सबके मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था।

सेना, कटक, बन्धु और पिता को छोड़कर राजनन्दिनी पागलों की तरह वनों में भटकती हुई बाहुबली को ढूँढ़ने लगी। "तुम अपनी नन्दिनी को इतनी सरलता से भूल गए, मेरे देवता! तुमने नन्दिनी के आने की प्रतिक्षा भी नहीं की।

कहाँ हो नाथ ? तुम किधर हो ? ठहरो, मै आ रही हूँ। मुझे देखकर तुम अपना सारा वैराग्य भूल जाओगे।"

किसी ने उसके पागलपन को रोकने की चेष्टा नहीं की। उसके पैरों के पोरवों से रक्त की धारें छूट रही थीं, और राह के पेड़–पौधों को हिला–हिलाकर राजनन्दिनी अपने प्रियतम का पता पूछ रही थी, "बताओ, मेरे नाथ कहाँ है ? बताओ, नहीं तो मैं तुम्हें जड़ से उखाड़ डालूँगी...नहीं,नहीं, तुम भी किसी पिया के त्यागे हुए हो, और अपने परिताप की ज्वाला में झुलसकर तुम जड़ हो गए हो। ठहरो, मैं एक तपस्वी के पास जा रही हूँ, उसके तप के प्रभाव से और उनके प्रति मेरे प्रेम के प्रभाव से तुम फिर हरे–भरे हो जाओगे। तुम्हें भी तुम्हारे प्रियतम मिलेंगे।"

राह में राजनन्दिनी ने जातिविरोधी जीवों को एक–दूसरे के साथ क्रीड़ा में मोदमग्न देखा। साँप गरूड़ के साथ, हिरण सिंह के साथ, न्यौले सर्प के साथ खेल रहे थे। चारों ओर वायु में सुगंधि छा रही थी और सभी मोह की इस प्रचंड ज्वाला को मौन नेत्रों से निरख रहे थे।

अंत में राजनन्दिनी को बाहुबली मिले, एकाग्र मुद्रा में ध्यानावस्थित, सीधे खड़े, आँखें बंद किए मुनि–साधना में रत। उनकी आँखें खुलने की प्रतिक्षा में किंकर्तव्यविमूढ़ राजनन्दिनी अपने देवता के चरणों में आसन मारकर बैठ गई और समय के साथ–साथ वह भी अचल हो गई।

आँधियाँ आई, बरसातें आईं, गरमी से आस–पास का घास–फूस तक झुलस गया, न ही बाहुबली की आँखें खुली और न ही राजनन्दिनी में कंपन हुआ। समय के प्रभाव ने उसके शरीर को परिवर्तित करके मिट्टी का ढ़ेर बना दिया। उसपर घास–फूस उग आए, लताओं का निर्माण हुआ कोई चारा न देखकर वे लताएँ बाहुबली के अचल शरीर पर लिपट गईं।

मैसूर राज्य के श्रवणबेलगोला स्थान पर स्थित, बाहुबली गोम्मटेश्वर की 57 फीट ऊँची, वैराग्य की वह साकार पाषाण–प्रतिमा आज भी विद्यमान है, और उस पर लिपटी, अपने प्रीतम के रंग में रंग गई वे पाषाण लताएँ आज भी उस राग और वैराग्य के अपूर्व संघर्ष का इतिहास कह रही हैं।

सिद्धान्तचक्रवर्ती परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्दजी मुनिराज का

संक्षिप्त जीवनवृत्त

पूर्व नाम	—	श्री सुरेन्द्र उपाध्ये
पिता	—	श्री कल्लपा उपाध्ये
माता	—	श्रीमती सरस्वती उपाध्ये
जन्म स्थान व दिनांक	—	शेडवाल (कर्नाटक) दिनांक 22 अप्रैल 1925
प्रारम्भिक शिक्षा	—	शान्तिसागर आश्रम (शेडवाल)
प्रारम्भिक व्यवसाय	—	कृषि
क्षुल्लक दीक्षा	—	15 अप्रैल 1946 परमपूज्य आचार्य श्री महावीरकीर्ति जी मुनिराज द्वारा तमदड्डी(कर्नाटक) में
नामकरण	—	क्षुल्लकश्री पार्श्वकीर्ति वर्णी
मुनि दीक्षा	—	25 जुलाई 1963, परमपूज्य आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी मुनिराज द्वारा दिल्ली में
नामकरण	—	मुनि श्री विद्यानन्द
उपाध्याय दीक्षा	—	17 नवम्बर 1974, परमपूज्य आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी मुनिराज द्वारा दिल्ली में
नामकरण	—	उपाध्यायश्री विद्यानन्द मुनि (बीसवीं शताब्दी के प्रथम उपाध्याय)
एलाचार्य दीक्षा	—	17 नवम्बर 1978, दिल्ली में
नामकरण	—	एलाचार्यश्री विद्यानन्द मुनि
सिद्धान्तचक्रवर्ती उपाधि	—	6 नवम्बर 1979, चतु:संघ द्वारा प्रदत्त इन्दौर में
आचार्य पदारोहण	—	28 जून 1987, परमपूज्य आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी के आदेशानुसार चतु:संघ द्वारा प्रदत्त दिल्ली में
नामकरण	—	आचार्यश्री विद्यानन्द मुनिराज

GRACEWAY ADVERTISERS 8774/5, Shidi Pura, New Delhi-5 - Ph: 23670663, 9312234908